मूल्य: ₹30 जुलाई–अगस्त 2020 आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

फल
विशेषांक

www.icar.org.in

केले की खेती पर 'बनाना कोविड' का खतरा, विलुप्त हो सकती हैं कई किस्में

केला, दुनियाभर में लाखों लोगों के लिए खाद्य, पोषण और आहार का मुख्य स्रोत है। अपने उच्च पोषण मूल्यों के कारण यह दुनिया के कई हिस्सों में प्रमुखता से उगाया जाता है। भारत, केले का प्रमुख उत्पादक देश है, लेकिन लैटिन अमेरिकी देश इस फल के सबसे बड़े निर्यातक हैं। एक अनुमान के मुताबिक लगभग 4,000 वर्ष पहले मलेशिया में उत्पन्न केला, विटामिन बी$_6$ और सी, मैंगनीज, पोटेशियम, फाइबर, बायोटिन एवं तांबे का उच्च स्रोत है। मलेशिया से केले की खेती भारत और फिलीपींस तथा आगे अमेरिका तक फैल गई। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार, 2017 में केले का दुनियाभर में कुल उत्पादन 114 मिलियन टन था, जिसका नेतृत्व एशिया, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका ने किया था।

पनामा विल्ट या टीआर 4 यानी फ्यूजेरियिम मुरझान (ट्रॉपिकल रेस 4) नामक एक कवक रोग ने कैवेंडिश केले की प्रमुख निर्यात विविधता को जकड़ लिया है। यह इस फसल के लिए एक बड़ा खतरा है। केले की किस्मों के अपने समृद्ध पोर्टफोलियो के साथ, भारत इस खतरे से निपटने के लिए नई, रोग-प्रतिरोधी प्रजातियों को विकसित करने का बीड़ा उठा सकता है।

केले की फसल को कई कीटों और रोगों के हमले का सामना करना पड़ रहा है।

भारत में केला उत्पादन

कृषि मंत्रालय के बागवानी सांख्यिकी 2018 के अनुसार, केले की खेती के तहत भारत का क्षेत्र लगभग 0.8 मिलियन हैक्टर बना हुआ है, जबकि उत्पादन 2015-16 में 29.13 मिलियन मीट्रिक टन से बढ़कर 2017-18 में 30.8 मिलियन मीट्रिक टन हो गया है। भारत में प्रमुख केला उत्पादक क्षेत्र तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक राज्यों में स्थित हैं। वर्ष 2017-18 में, भारत द्वारा 30.8 मिलियन मीट्रिक टन उत्पादन में से केवल 101,314.37 मीट्रिक टन केले का निर्यात किया गया था। यह दर्शाता है कि भारत में केले का उत्पादन घरेलू उपभोग के लिए अधिक होता है।

केला फसल

फ्यूजेरियम मुरझान रोग प्रमुख रूप से केले के लिए एक समस्या बन गया है। यह एशिया में केले के उत्पादन को प्रभावित करने वाला एक गंभीर खतरा बन रहा है। एक बार अगर यह रोग फसलों को प्रभावित करता है, तो इसका उपचार नहीं किया जा सकता है। फ्यूजेरियम मुरझान रोग या पनामा रोग मृदाजनित कवक रोग, फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम एफएसपी क्यूबेंस है और यह भारत सहित पूरे विश्व में अत्यंत विध्वंसकारी है। यह भारत की लगभग सभी व्यावसायिक किस्मों को प्रभावित कर सकता है। यदि इससे एक बार खेत रोगग्रस्त हो जाता है तो इसके रोगाणु मृदा में 40 वर्षों से अधिक समय तक जीवित रह सकते हैं और सम्पूर्ण पौधों की मृत्यु का कारण बन सकते हैं।

ट्रॉपिकल रेस 4 क्या है?

कवकीय फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम एफएसपी क्यूबेंस (फॉक) की एक नस्ल है, जो कैवेंडिश समूह के केलों सहित सभी केलों को संक्रमित करती है। यह विशेष नस्ल जो वीसीजी 01213/16 नामक एक विशेष वानस्पतिक संगतता समूह (वेजीटेटिव कम्पाटेबिल्टी ग्रुप) से संबंधित है, भारत के उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय दोनों ही क्षेत्रों में उगाए जाने वाले केलों के सभी किस्मों को संक्रमित कर सकती है।

भारत, वर्ष 2010 और 2017 के बीच 29 मिलियन टन केले के प्रतिवर्ष के औसत उत्पादन के साथ अग्रणी उत्पादक देश है। फिलीपींस 60 किलोग्राम केले का प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति खपत वाला सबसे बड़ा उपभोक्ता है। एफएओ के अनुसार केला युगांडा, रवांडा और कैमरून जैसे देशों में 25 प्रतिशत कैलोरी प्रदान करता है, जहां प्रति व्यक्ति खपत 200 किलोग्राम केले से अधिक है। कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं में केले उच्च पोषण मूल्य के कारण खाद्य सुरक्षा प्रदान करते हैं और नकदी फसल के रूप में आय सृजन का एक स्रोत भी हैं।

किन-किन राज्यों में ट्रापिकल रेस 4 का संक्रमण है?

भाकृअनुप-राष्ट्रीय केला अनुसंधान केन्द्र द्वारा अब तक किए गए सर्वेक्षण से सूचना मिली है कि बिहार राज्य के कटिहार एवं पूर्णिया जिलों, उत्तर प्रदेश के फैजाबाद एवं बाराबंकी जिलों, गुजरात के सूरत जिले तथा मध्य प्रदेश के बुरहानपुर जिले में विषैली नस्ल ट्रॉपिकल रेस 4 की मौजूदगी है।

टीआर 4 एक मृदा रोगजनक है, जो पहली बार 1990 के दशक में मलेशिया और इंडोनेशिया में खोजा गया था और यह बाद में चीन में तेजी से फैल गया। केले के किसानों की आजीविका के लिए खतरा पैदा करते हुए इंडोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया, मलेशिया और फिलीपींस में केले का उत्पादन भी टीआर 4 से बुरी तरह प्रभावित हुआ है। यह रोग मुख्य रूप से केले की कैवेंडिश किस्मों को प्रभावित करता है, जो शिपिंग में स्थायित्व के लिए जानी जाती हैं। इस रोग ने लैटिन अमेरिकी देशों विशेष रूप से कोलंबिया में केले की फसल को प्रभावित करना शुरू कर दिया है। ■

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी
वर्ष : 41, अंक : 4, जुलाई-अगस्त 2020

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक : **अशोक सिंह**
संपादन सहयोग : **सुनीता अरोड़ा**

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी : **डा. वीरेन्द्र कुमार भारती**
तकनीकी अधिकारी : **अशोक शास्त्री**

लेआउट डिजाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 150.00
E-mail : phalphul@gmail.com

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें।

विषय सूची

फल विशेषांक

संपादकीय **फल उत्पादन बढ़ाने की चुनौती–अशोक सिंह**

आवरण कथा — 4
भारत में फल उत्पादन परिदृश्य, चुनौतियां एवं संभावनाएं
पी.एल. सरोज

मूल्यवर्धन — 11
फल प्रसंस्करण उद्योग की स्थिति एवं संभावनाएं
नीलिमा गर्ग

विशेष — 14
लोकाट है पोषण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए वरदान
अजय कुमार त्रिवेदी, सुशील कुमार शुक्ला, घनश्याम पाण्डेय **और** देवेन्द्र पाण्डेय

विधि — 17
वैज्ञानिक तरीके से लगाएं नये बाग
अनोप कुमारी, महेश चौधरी **और** ए.एस. तेतरवाल

रोकथाम — 20
अमरूद में कीट एवं रोग प्रबंधन
डी.के. सूर्यवंशी, एम.के. कुरील **और** डी.एस. मंडलोई

अभिनव — 23
कीवीफल उत्पादन की बढ़ती संभावनाएं
रविना पंवार, विशाल एस. राणा **और** ए.के. सिंह

नियंत्रण — 27
आम की फसल में कीट प्रबंधन
मनोज कुमार, आर.एन. यादव **और** शिवांशु तिवारी

लाभकारी — 31
पोषक तत्वों का खजाना है करौंदा
प्रियंका कुमावत **और** संदीप कुमार

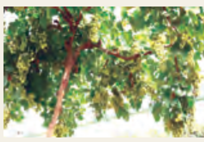
नवीन शोध — 34
कम समय में पकने वाली अंगूर की नई संकर किस्में
संजय कुमार सिंह, महेंद्र कुमार वर्मा, विश्व बंधु पटेल, चवलेश कुमार **और** अरविन्द

मुनाफा — 37
अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बेल की बागवानी
ए.के. सिंह, संजय सिंह, पी.एल. सरोज, डी.एस. मिश्रा **और** विकास यादव

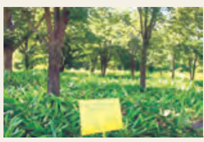
कृषि बागवानी — 44
फल-मसाला-खाद्यान्न की समेकित कृषि प्रणाली
आर.पी. यादव, जे.के. बिष्ट, वी.एस. मीणा **और** एम. परिहार

विषय सूची

फल — 46
पपीते की उन्नत प्रजातियों की वैज्ञानिक खेती
आर.एस. सेंगर, आलोक कुमार सिंह **और** डी.के. श्रीवास्तव

कृषि काव्य — 50
अमरूद चालीसा
सुशील कुमार शुक्ल

विशेष — 51
कैंथ है एक पोषक फल
प्रकाश चंद्र त्रिपाठी

परागण — 54
बागवानी फसलों के अधिक उत्पादन में कीटों का महत्व
सचिन सु. सुरोशे, भाग्यश्री एस. एन., स्वीटी कुमारी, सुभाष चंद्र, शशांक पी.आर. **और** पी. के. सिह

परिदृश्य — 56
छत्तीसगढ़ में अंगूर उत्पादन
पी.सी. चौरसिया

प्रबंधन — 59
ऊसर भूमि में फलदार वृक्षों की खेती
श्यामजी मिश्रा, यशपाल सिंह, विनय कुमार मिश्र **और** पुल्कित श्रीवास्तव

औषधीय — 62
अमृत फल के रूप में आंवला की उपयोगिता
वी. संगीता, प्रेमलता सिंह, वी.एस. तोमर, सत्यप्रिय, वी. लेनिन, डी.यू.एम. राव, मोनिका वासन, सुकल्या बरुआ **और** एल. मुरली कृष्णन

मार्गदर्शन — 63
लीची की वार्षिक बागवानी क्रियाएं
अमरेन्द्र कुमार, एस.डी. पाण्डेय, रामकिशोर पटेल **और** कुलदीप श्रीवास्तव

सफलता गाथा — 66
दशहरी आम की आइसक्रीम से उद्यमिता विकास
पी.एस. गुर्जर, ए.के. वर्मा, मनीष मिश्रा, रोहित जायसवाल, डी.के. शुक्ल **और** एस. राजन

जानकारी — 68
बागों में मानसून के कार्यकलाप
राम रोशन शर्मा, हरे कृष्णा, स्वाति शर्मा **और** विजय राकेश रेड्डी

चुनौती — आवरण II
केले की खेती पर 'बनाना कोविड' का खतरा, विलुप्त हो सकती हैं कई किस्में

सार-समाचार — आवरण III
हींग और केसर की खेती को मिलेगा बढ़ावा

संपादकीय

विशेषांक

फल उत्पादन बढ़ाने की चुनौती

फल उत्पादन में चीन के बाद सबसे बड़े उत्पादक के तौर पर भारत का नाम आता है। निस्संदेह यह गर्व की बात है। इसका श्रेय काफी हद तक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अंतर्गत कार्यरत विभिन्न बागवानी अनुसंधान संस्थानों के वैज्ञानिकों द्वारा विकसित फलों की उन्नत किस्मों और बागवानों की मेहनत को जाता है। लेकिन इस वास्तविकता से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है कि विश्व के कुल फल उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी लगभग 12 प्रतिशत है और वैश्विक फल व्यापार में भागीदारी मोटे तौर पर लगभग 2 प्रतिशत है। यही नहीं उत्पादकता की दृष्टि से अन्य फल उत्पादक देशों के साथ तुलना करने पर काफी पिछड़ेपन की स्थिति नजर आती है। वर्ष 2019-20 के फल उत्पादन की बात करें तो अंगूर, केला, आम, नीबूवर्गीय फल, पपीता, अनार जैसे फलों के उत्पादन में गिरावट के कारण गत वर्ष की अपेक्षा कुछ कम पैदावार होने का अनुमान है। कहने की जरूरत नहीं कि यह चिंता का विषय है और समय रहते नीति निर्माताओं और वैज्ञानिकों द्वारा इस ओर ध्यान दिया जाना जरूरी है।

फलोत्पादन की उपयोगिता को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि खाद्यान्न की तुलना में फलदार फसलों से प्रति इकाई क्षेत्र कहीं अधिक उत्पादन ले पाना संभव होता है। पपीता, केला और अंगूर आदि फल इसके उदाहरण हैं, जिनकी पैदावार परंपरागत फसलों की तुलना में प्रति इकाई क्षेत्र कई गुना अधिक मिलती है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बागों को लगाने का शुरुआती निवेश एक बार ही करना पड़ता है उसके बाद कई वर्षों तक महज देखभाल की लागत में ही पैदावार मिलती रहती है।

विकासशील देश होने के साथ बढ़ती आबादी और आपसी बंटवारे के कारण निरंतर छोटे होते जा रहे भू जोत की स्थिति, पुराने बागों की जर्जर हालत तथा आधुनिक बागवानी विधियों का अभाव, बुनियादी ढांचे की कमजोर हालत, कोल्ड स्टोरेज सुविधाओं की समुचित व्यवस्था न होने के साथ बागवानों की खराब आर्थिक दशा सहित अनेक ऐसे कारण गिनवाए जा सकते हैं, जिनकी वजह से फलोत्पादन की उत्पादकता और उपज में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पा रही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि केंद्र और विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर बागवानी फसलों को प्रोत्साहन और आर्थिक सहायता देने के उद्देश्य से योजनाएं चलाई जाती रही हैं। विशेषज्ञों की राय मानें तो इस दिशा में सिर्फ सरकारी कार्यक्रमों की आस में आगे बढ़ पाना मुश्किल है। समृद्ध किसानों और निजी क्षेत्र की एग्रो कंपनियों को पहल करते हुए इन्फ्रास्ट्रक्चर के विकास में योगदान देने के लिए आगे आना होगा।

आपकी अपनी पत्रिका **फल फूल** के इस अंक को **फल विशेषांक** के तौर पर प्रकाशित करने के पीछे सबसे बड़ा कारण है समस्त कृषक समुदाय, खासतौर पर, फलोत्पादन से सम्बद्ध ग्रामीण आबादी को इस क्षेत्र की समस्याओं के प्रति जागरूक बनाते हुए फल उत्पादन के वैज्ञानिक तौर-तरीकों से अवगत करवाने का प्रयास। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते इस विशेषांक में प्रमुख फलों और उनकी समस्याओं के वैज्ञानिक समाधान पर आधारित जानकारियां को विशेषज्ञों की कलम से संजोया गया है। बाग लगाने की विधियां, फलों के रोगों और कीटों का प्रबंधन, कृषि वानिकी सहित फल प्रसंस्करण की आसान तकनीकों पर भी अत्यंत सरल और रोचक भाषा में इन लेखों में बताया गया है। इसके अलावा फलोत्पादन बढ़ाने की वैज्ञानिक विधियों और बाग रखरखाव की बारीकियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

हमें विश्वास है कि बागवान अपने परंपरागत तरीकों को बदलते हुए इन वैज्ञानिक जानकारियों के अनुरूप बागों में कुछ बदलाव करने की दिशा में कदम अवश्य उठाएंगे। आशा करते हैं कि इन प्रयत्नों के नतीजे उन्हें बेहतर फल उत्पादन, लागत में कमी तथा अधिक आय की प्राप्ति के तौर पर जल्द नजर आने लगेंगे।

(अशोक सिंह)

भारत में फल उत्पादन
परिदृश्य, चुनौतियां एवं संभावनाएं

पी.एल. सरोज*

भारत, फल उत्पादन में एक अग्रणी देश है तथा विश्व पटल पर चीन के बाद फल उत्पादन में सबसे बड़ा उत्पादक देश है। वर्ष 2017-18 के आंकड़ों के अनुसार भारत में 6.51 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल पर फलों की खेती हो रही है, जिससे 97.36 मिलियन टन प्रतिवर्ष फल उत्पादन मिल रहा है। वर्तमान में फल उत्पादकता 14.59 टन/हैक्टर है तथा शुद्ध उपलब्धता लगभग 200 ग्राम/व्यक्ति/दिन हो गई है। उक्त उपलब्धियों के बाद भी फल उत्पादन के क्षेत्र में अनेक चुनौतियां हैं जैसे-जनसंख्या वृद्धि, घटती जोत, जल स्रोतों पर दबाव, प्रसंस्करित उत्पादों के क्षेत्र में निचले पायदान पर होना, भंडारण क्षमता में कमी, निर्यात में कम भागीदारी, जलवायु परिवर्तन आदि। अत: आवश्यकता इस बात की है कि फल उत्पादन के क्षेत्र में भविष्य की संभावनाओं जैसे-पोषण सुरक्षा हेतु ताजे फलों एवं मूल्य संवर्धित पदार्थों की बढ़ती मांग की पूर्ति, किसानों की आय बढ़ाने के विकल्प के रूप में फल उत्पादन, ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए, रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध करवाने हेतु, शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की अनुपयोगी भूमि को फल उत्पादन के लिए उपयोगी बनाने, जलवायु परिवर्तन संबंधी समस्याओं का सामना करने आदि पर विशेष बल दिया जाये। इसके अतिरिक्त, नई शोध उपलब्धियों जैसे-सेंसर आधारित तकनीक, ड्रोन उपयोग, डिसीज डायग्नोस्टिक तकनीक, टिश्यू कल्चर द्वारा पौध बनाना, सघन बागवानी, छत्रक प्रबंधन, बूंद-बूंद सिंचाई के साथ उर्वरकों का प्रयोग, जैव कीटनाशकों का उपयोग, स्मार्ट पैकेजिंग, प्रसंस्करण में ऑटोमेशन, ई-मार्केटिंग आदि के प्रयोग से फल उत्पादन को बढ़ावा देने की अपार संभावनाएं हैं।

भारत में बागवानी विकास की प्रक्रिया कम रोचक नहीं है। देश की आजादी से पूर्व वर्ष 1905 में देश में छह कृषि विद्यालयों की स्थापना यथा: कोयम्बटूर, कानपुर, लायलपुर (अब पाकिस्तान में), नागपुर, पुणे एवं साबौर में की गई, जहां पर फल वृक्षों पर शोध कार्य प्रारंभ किए गये। इसके बाद 1936 में कन्नूर (कर्नाटक) में फलों पर आधारित एक शोध केन्द्र की स्थापना की गई। आज देश में फल वृक्षों के महत्व को समझते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के अधीन पांच केन्द्रीय संस्थान (बेंगलुरु, लखनऊ, श्रीनगर, बीकानेर एवं नागपुर) एवं उनसे संबद्ध क्षेत्रीय शोध केन्द्र तथा चार राष्ट्रीय केन्द्र (तिरूचरापल्ली,

*निदेशक, भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर-334006 (राजस्थान)

सोलापुर, पुणे एवं मुजफ्फरपुर) मुख्य रूप से फल वृक्षों पर शोध, विकास एवं प्रसार का कार्य कर रहे हैं। तीन अखिल भारतीय परियोजनाएं (उष्ण एवं उपोष्ण फल, शुष्क क्षेत्रीय फल एवं शीतोष्ण फल) भी फल वृक्षों से संबंधित क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान हेतु कार्य कर रही हैं। इसके अतिरिक्त देश में बागवानी के सात विश्वविद्यालय एवं 17 संकायों में भी फल वृक्षों पर शोध कार्य किया जा रहा है। देश के अधिकांश कृषि विश्वविद्यालयों एवं डीम्ड विश्वविद्यालय जैसे-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में भी फल विज्ञान पर अलग से विभाग कार्यरत हैं, जहां पर फल वृक्षों पर शोध किया जाता है। केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, गुरुग्राम एवं राज्य सरकारों के अधीन बागवानी निदेशालय भी फल वृक्षों के शोध एवं प्रसार कार्य को बढ़ावा दे रहे हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् (वर्ष 1947 में), खाद्यान्न उत्पादन पर विशेष बल दिया गया और साठ के दशक में भारत में हरित क्रांति आई एवं देश खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ चला। इसके बाद

केला

चेरी

वैश्विक फल उत्पादन परिदृश्य

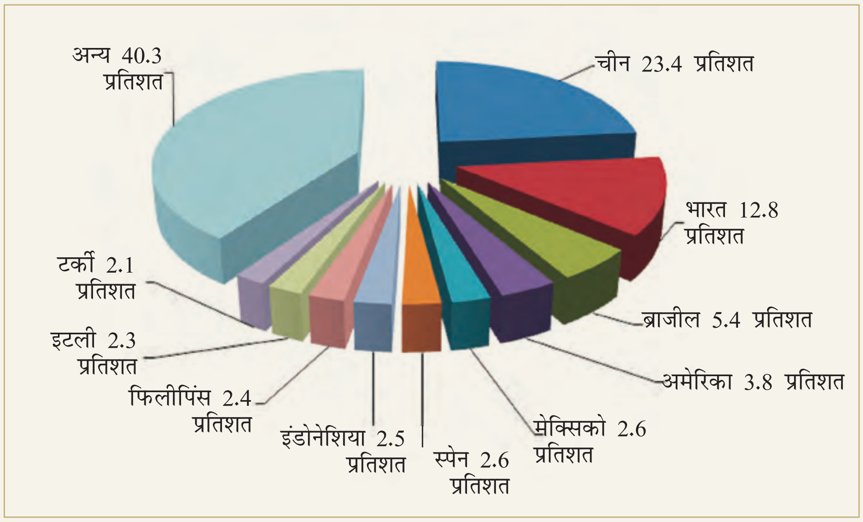

विभिन्न फलों का कुल उत्पादन में योगदान (वर्ष 2017-18)

भारत में मृदा एवं जलवायु की विविधता बहुत ही व्यापक है। इसके कारण लगभग सभी प्रकार के उष्ण, उपोष्ण एवं शीतोष्ण फलों की खेती की जाती है। फल स्वास्थ्यवर्द्धक एवं औषधीय गुणों से परिपूर्ण होते हैं। इनकी खेती अधिक उत्पादकता में सक्षम, अधिक मानव श्रय दिवस का सृजन, भूमि के क्षरण को रोकने एवं उर्वराशक्ति बढ़ाने में उपयोगी, पर्यावरण में संतुलन बनाये रखने के साथ-साथ स्थान विशेष की सुन्दरता को बढ़ाने में भी सक्षम होती है। ये फलदार वृक्ष विभिन्न क्षेत्रों जैसे-शुष्क कृषि क्षेत्रों, वर्षा आधारित क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्र, रेगिस्तानी, तटीय क्षेत्रों के साथ ऊसर, बंजर एवं परती भूमि पर रोपित किये जा सकते हैं। सस्य फसलों की तुलना में (145 मानव श्रम दिवस) फल वृक्षों की खेती से अधिक रोजगार सृजन (860 मानव श्रम दिवस) किया जा सकता है। देश में अनेक तरह के फल वृक्ष पाये जाते हैं किन्तु व्यावसायिक स्तर पर लगभग 28 फल वृक्षों की खेती ही प्रचलित है। भारत में फल वृक्षों के उत्पादन में अभूतपूर्व प्रगति हुई है और आज विश्व पटल पर भारत, चीन के बाद सबसे बड़ा फल उत्पादक देश है। विश्व के प्रमुख फल उत्पादक देशों में चीन, भारत, ब्राजील, अमेरिका, मेक्सिको, स्पेन, इंडोनेशिया, फिलीपींस, इटली एवं टर्की हैं। भारत की फल उत्पादकता 14.95 टन/हैक्टर है, परन्तु विश्व के कुछ ऐसे देश हैं जैसे-इंडोनेशिया, अमेरिका एवं ब्राजील जिसकी फल उत्पादकता भारत से अधिक है। विश्व के कुल फल उत्पादन (853.67 मिलियन टन) का 12.8 प्रतिशत उत्पादन भारत द्वारा किया जाता है।

ताजे फलों की टोकरी

इस बात पर विचार-विमर्श होने लगा कि खाद्य सुरक्षा के साथ-साथ प्रत्येक नागरिक को उचित पोषण भी मिले, यह भी आवश्यक है। जब भोजन में संतुलित एवं गुणवत्तायुक्त पोषण की बात की जाती है तो बागवानी फसलों विशेषकर फल एवं सब्जियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। भारत, विश्व का पहला देश है, जहां पर खाद्य सुरक्षा पोषण बिल पारित किया गया, जिसके तहत देश के सभी नागरिकों को भर पेट भोजन उपलब्ध करवाया जाना सुनिश्चित किया गया है। संतुलित पोषण से तात्पर्य भोजन में सभी आवश्यक तत्वों जैसे-प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, खनिज आदि का प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है। फलों को भोजन का एक हिस्सा बना लेने से अधिकांशत: उक्त पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। फलों में आम, पपीता, अनार, केला, सेब, खुबानी आदि विटामिन 'ए' के प्रमुख स्रोत हैं तथा बारबेडोज चेरी, आंवला, नीबू, अमरूद, कीवी फल, स्ट्रॉबेरी, अनन्नास आदि विटामिन 'सी' के स्रोत हैं। सेब, केला, अनार, फालसा, करोंदा, मलबेरी आदि लौह खनिज तथा खुबानी, संतरा, अनन्नास, लीची, पपीता आदि में कैल्शियम भरपूर मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त फलों के सेवन से शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है एवं विभिन्न रोगों की रोकथाम में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए खजूर, केला, पपीता आदि के सेवन से तुरंत ऊर्जा का संचार होता है। विटामिन 'ए' से परिपूर्ण फलों के सेवन से आंख की रोशनी तेज होती है और त्वचा एवं प्रजनन संबंधी विकार दूर होते हैं तथा शरीर का सम्पूर्ण विकास होता है। इसी प्रकार विटामिन 'सी' से परिपूर्ण फलों के सेवन से

राज्यवार फलोत्पादन की स्थिति

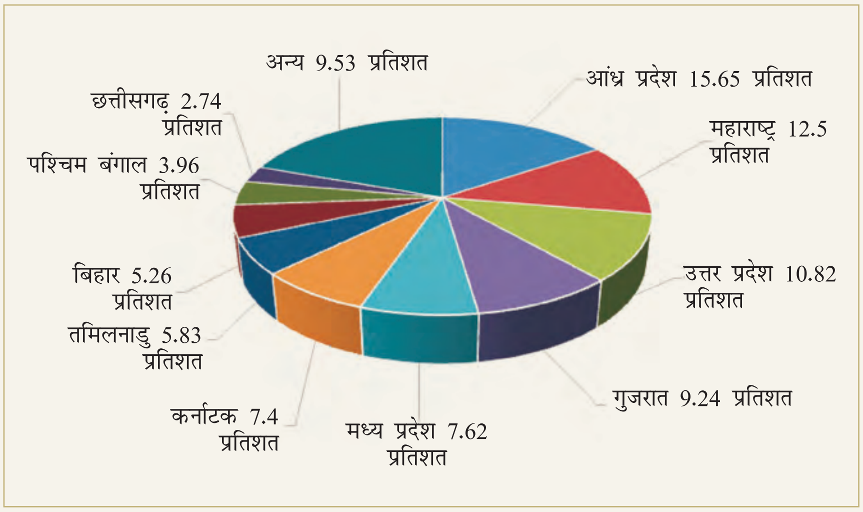

फलों के अंतर्गत क्षेत्रफल की दृष्टि से विभिन्न प्रदेशों का योगदान (वर्ष 2017-18)

फलों के अंतर्गत क्षेत्रफल की दृष्टि से आंध्र प्रदेश (15.65 प्रतिशत) का सबसे बड़ा योगदान है, उसके बाद महाराष्ट्र (12.05 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (10.82 प्रतिशत), गुजरात (9.24 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (7.62 प्रतिशत) एवं कर्नाटक (7.4 प्रतिशत) का स्थान आता है। किन्तु उत्पादन की दृष्टि से महाराष्ट्र का योगदान (11.58 प्रतिशत) सबसे अधिक है, उसके बाद आंध्र प्रदेश (10 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (7.3 प्रतिशत), कर्नाटक (6.63 प्रतिशत), गुजरात (6.49 प्रतिशत) एवं मध्य प्रदेश (5.44 प्रतिशत) का नाम आता है। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि आवश्यक नहीं है, जिस प्रदेश का क्षेत्रफल सबसे ज्यादा है वहां का उत्पादन भी सबसे ज्यादा हो। यही कारण है कि आंध्र प्रदेश में फल वृक्षों के अंतर्गत क्षेत्रफल सबसे ज्यादा है किन्तु फलों का उत्पादन महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा होता है। फलों का कम या ज्यादा उत्पादन क्षेत्रफल पर तो निर्भर करता ही है, अपितु वहां की जलवायु, मृदा उर्वरता, सिंचाई के साधन, पोषण एवं कीट-व्याधि का उचित नियंत्रण आदि पर भी निर्भर करता है। अधिक उत्पादन के लिए उचित प्रजातियां, छत्रप प्रबंधन, मूलवृंतों का प्रयोग, सघन बागवानी एवं उचित देखभाल भी आवश्यक हैं।

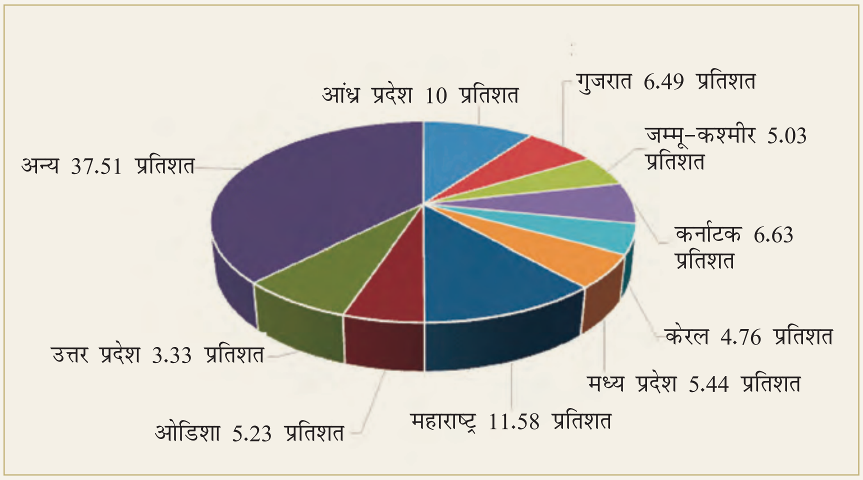

फलों के उत्पादन की दृष्टि से विभिन्न प्रदेशों का योगदान (वर्ष 2017-18)

खजूर

फलों का निर्यात

भारत में उत्पादित फलों का घरेलू उपयोगों के साथ प्रतिवर्ष विदेशों में निर्यात भी किया जाता है। बागवानी फसलों के कुल निर्यात का लगभग 31.98 प्रतिशत ताजे फलों एवं सूखे मेवे के रूप में किया जाता है। जिन फलों का भारत से निर्यात किया जाता है उनमें आम, अंगूर, केला, अनार, काजू, एवं अखरोट प्रमुख हैं। आम का मुख्य रूप से संयुक्त अरब अमीरात, युनाइटेड किंगडम, सउदी अरब, कतर, अमेरिका, कुवैत, ओमान, नेपाल एवं सिंगापुर में निर्यात किया जाता है। अंगूर का नीदरलैंड, रूस, युनाइटेड किंगडम, जर्मनी, संयुक्त अरब अमीरात, सउदी अरब, थाइलैंड, हांगकांग, बेल्जियम आदि तथा केले का नेपाल, बांग्ला देश, ईरान, कतर, अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, सिंगापुर, जर्मनी, हांगकांग, युनाइटेड किंगडम, थाइलैंड, कनाडा, कोरिया आदि को निर्यात किया जाता है। सेब का निर्यात मुख्य रूप से नेपाल, बांग्ला देश, ईरान, कतर, संयुक्त राज्य, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, सिंगापुर, जर्मनी, पनामा गणराज्य, युनाइटेड किंगडम, लाइबेरिया, थाइलैंड आदि को किया जाता है। आजकल चीकू का भी निर्यात संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन, ओमान, कतर, कनाडा, सउदी अरब अमीरात, युनाइटेड किंगडम, सिंगापुर आदि को होने लगा है। एपीडा द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2018-19 में भारत ने ताजे फलों का निर्यात करके 4817.35 करोड़ रुपये अर्जित किया है।

जामुन

अंगूर

सर्दी-जुकाम की समस्या से छुटकारा मिलता है। लौह तत्व वाले फलों के सेवन से खून की कमी दूर होती है तथा प्रचुर मात्रा में कैल्शियम वाले फलों के सेवन से हड्डियां मजबूत होती हैं एवं दांतों की समस्या में लाभ मिलता है। फल, एंटीऑक्सीडेंट के भी अच्छा स्रोत होते हैं, जिसके कारण विभिन्न रोगों के समाधान में लाभ मिलता है।

प्रमुख फल उत्पादक प्रदेशों में, उत्तर प्रदेश में आम, अमरूद एवं आंवला का उत्पादन सबसे ज्यादा होता है जबकि आंध्र प्रदेश में केला, पपीता एवं मौसमी का उत्पादन सर्वाधिक होता है। इसी प्रकार अंगूर एवं अनार का महाराष्ट्र में, चीकू एवं नीबू का गुजरात में तथा संतरा मध्य प्रदेश में एवं अनन्नास पश्चिम बंगाल में सबसे ज्यादा पैदा होता है। अपवाद स्वरूप पपीता एवं मौसमी को छोड़कर, जिसका उत्पादन और उत्पादकता दोनों ही आंध्र प्रदेश में

लीची

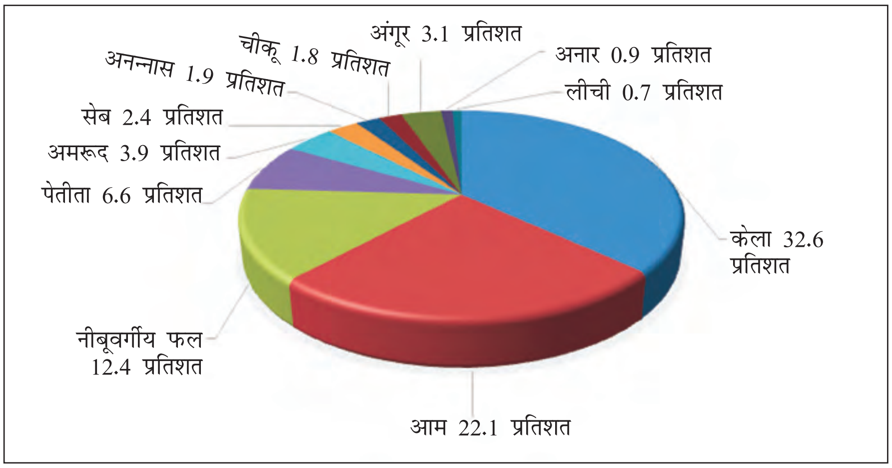

विभिन्न फलों का कुल उत्पादन में योगदान (वर्ष 2017-18)

भारत में फल उत्पादन की स्थिति

भारत एक अग्रणी फल उत्पादक देश है एवं कुछ फल वृक्ष जैसे-आम, जामुन, आंवला, बेर, बेल, केर, करोंदा, फालसा, कैंथ आदि भारत के देशज हैं। भारत में फल उत्पादन वर्ष 1950-51 से वर्ष 2017-18 तक लगभग 11 गुना बढ़ गया है। देश में फल उत्पादन के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन लगभग लगातार बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2017-18 के आंकड़ों के अनुसार भारत में 6.51 मिलियन हैक्टर भूमि पर फल वृक्षों की खेती हो रही है, जिससे 97.36 मिलियन टन फलों का प्रतिवर्ष उत्पादन मिल रहा है। वर्तमान में फल की उत्पादकता 14.95 टन प्रति हैक्टर है तथा इसकी सकल उपलब्धता 200 ग्राम/व्यक्ति/दिन हो गई है। देश के प्रमुख फल आम, केला, नीबूवर्गीय फल, पपीता, अमरूद, सेब, अनार, अंगूर, चीकू, अनन्नास, लीची आदि हैं। इनमें मुख्य भाग केला व आम का है, जो कुल उत्पादन में 54.7 प्रतिशत तक भागीदारी रखते हैं। भारत में उगाये जाने वाले कुछ फल वृक्षों जैसे-आम, अंगूर, अनार, केला, पपीता, चीकू आदि की उत्पादकता विश्व की औसत उत्पादकता से या तो अधिक है या उसके समकक्ष है।

फल उत्पादन की चुनौतियां

भारत में फल उत्पादन की उपलब्धियां संतोषजनक हैं, परन्तु अभी भी इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ने की जरूरत है। देश को फलोत्पादन में निर्यातक के रूप में स्थापित होने में आने वाली चुनौतियां निम्नानुसार हैं:

- **जनसंख्या वृद्धि:** जहां स्वतंत्रता के समय देश की जनसंख्या 36.1 करोड़ थी, वहीं आज बढ़कर 136 करोड़ तक पहुंच चुकी है। प्रति व्यक्ति खेती योग्य जमीन की उपलब्धता भी घटती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या की पोषण जरूरतों को पूरा करने हेतु उत्पादन स्तर को भी इसी दर से बढ़ाना होगा।
- **जल स्रोतों पर दबाव:** देश के 44 प्रतिशत भू-भाग में असिंचित तथा वर्षा आधारित खेती की जा रही है, जिसमें सिंचाई सुविधाएं दिये बिना उत्पादन में बढ़ोतरी सम्भव नहीं है। ऐसे क्षेत्रों में टपक सिंचाई एवं नमी प्रबंधन की विधियां विशेष कारगर होंगी।
- **उत्पाद गुणवत्ता की कमी:** विश्व के कुल उत्पादन में भारत भले ही दूसरे स्थान पर है, परन्तु हमारे उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को पूरा करने में कभी-कभी विफल रहते हैं। इस कारण निर्यात में हमारी भागीदारी बहुत कम हो जाती है। घरेलू स्तर पर भी गुणवत्तायुक्त फलों की मांग बढ़ रही है।
- **तुड़ाई उपरांत प्रबंधन व भंडारण क्षमता की कमी:** आज भी देश के कुल फल उत्पादन का लगभग 20-25 प्रतिशत भाग बिना उपयोग किये ही खराब हो जाता है। इसका प्रमुख कारण इन फसलों की शीघ्र खराब होने की प्रकृति, सप्लाई चेन का अभाव तथा भंडारण सुविधाओं में कमी का होना है। वर्तमान में कुल उत्पादन का 2-3 प्रतिशत भाग ही परिरक्षित कर पाने में सक्षम हैं। वहीं कुछ विकसित देशों में 70-80 प्रतिशत तक परिरक्षण किया जा रहा है। इसे बढ़ाने की चुनौती हमारे सामने है।
- **निर्यात भागीदारी कम होना:** ताजे फलों और उनके उत्पादों को निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित होती है, परन्तु भारत कुल उत्पादन का लगभग 2 प्रतिशत ही निर्यात कर पा रहा है। निर्यात व घरेलू जरूरतों के मध्य सन्तुलन कर इसे बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
- **जलवायु परिवर्तन का प्रभाव:** असमय सूखा एवं बाढ़, ओले एवं पाला पड़ना, चक्रवाती तूफान आना आदि समस्याओं से भी फलों की उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त नये-नये कीट एवं व्याधियों का पैदा होना भी एक चुनौती बनता जा रहा है। इसके लिए फल उत्पादन के नये वैज्ञानिक तौर-तरीके एवं मौसम परिवर्तन के पूर्वानुमान पर बल देने की आवश्यकता है।
- **उत्पादन सामग्री की समयबद्ध उपलब्धता:** जहां एक तरफ कृषकों तक नवीन तकनीकी ज्ञान पहुंचाने की आवश्यकता है, वहीं उत्पादन सामग्री जैसे-गुणवत्तायुक्त पौध/बीज, खाद-उर्वरक, पानी, उपकरण/मशीन आदि सही समय पर व पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।
- **आय में वृद्धि कैसे हो:** किसानों की आमदनी कैसे बढ़े, देश के सामने यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। इसके लिए किसान बागवानी को एक विकल्प के रूप में देख रहे हैं। किसान वर्ग की आय बढ़ोतरी, उत्पादन स्तर बढ़ाने के साथ लागत को कम करने से होगी। इसके अतिरिक्त फल उत्पादन के साथ अन्य उद्यमों को भी समावेशित करने की आवश्यकता है।

सारणी 1. विभिन्न फलों का उत्पादन करने वाले प्रमुख प्रदेश, अधिकतम एवं न्यूनतम उत्पादकता वाले प्रदेशों के बीच का अन्तर

फल	अधिकतम उत्पादन		अधिकतम उत्पादकता		न्यूनतम उत्पादकता		अन्तर (टन/हैक्टर)
	प्रदेश	उत्पादन (मीट्रिक टन)	प्रदेश	उत्पादकता (टन/हैक्टर)	प्रदेश	उत्पादकता (टन/हैक्टर)	
आम	उत्तर प्रदेश	4551.81	राजस्थान	17.54	हिमाचल प्रदेश	0.75	16.83
अमरूद	उत्तर प्रदेश	928.44	आंध्र प्रदेश	24.12	अरुणाचल प्रदेश	1.89	22.23
पपीता	आंध्र प्रदेश	1687.82	आंध्र प्रदेश	93.72	सिक्किम	0.74	92.98
अंगूर	महाराष्ट्र	2286.44	पंजाब	28.67	राजस्थान	1.33	27.34
केला	आंध्र प्रदेश	5003.07	मध्य प्रदेश	69.54	सिक्किम	2.90	66.64
अनार	महाराष्ट्र	1789.46	तमिलनाडु	23.39	हिमाचल प्रदेश	1.14	22.25
संतरा	मध्य प्रदेश	2103.64	पंजाब	23.40	सिक्किम	1.45	21.95
मौसम्बी	आंध्र प्रदेश	2003.11	आंध्र प्रदेश	24.17	हिमाचल प्रदेश	1.53	22.64
नीबू	गुजरात	605.62	कर्नाटक	23.37	हिमाचल प्रदेश	0.58	22.79
अनन्नास	पश्चिमी बंगाल	345.15	कर्नाटक	62.42	सिक्किम	3.21	59.21
चीकू	गुजरात	326.36	तमिलनाडु	29.50	हिमाचल प्रदेश	1.50	28.00
आंवला	उत्तर प्रदेश	384.32	तमिलनाडु	20.56	ओडिशा	0.36	20.20

स्रोत: एन.एच.बी.-बागवानी सांख्यिकी परिदृश्य: 2017-18

आम

पपीता

सबसे ज्यादा है। यह आवश्यक नहीं कि जिस प्रदेश में सबसे ज्यादा उत्पादन होता है उस प्रदेश की उत्पादकता भी सबसे अधिक हो। सारणी-1 में दिए गए आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि अमरूद, पपीता एवं मौसमी की उत्पादकता आंध्र प्रदेश में सबसे ज्यादा है, जबकि अनन्नास एवं नीबू की उत्पादकता कर्नाटक में सबसे ज्यादा है। इसी तरह अनार, चीकू, आंवला की उत्पादकता तमिलनाडु में सबसे अधिक होती है, जबकि अंगूर एवं किन्नू पंजाब में तथा केला मध्य प्रदेश और आम की उत्पादकता राजस्थान में सबसे ज्यादा है। उल्लेखनीय यह है कि कुछ प्रदेशों में फलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल तो बहुत कम है, लेकिन उत्पादकता की दृष्टि से वे प्रमुख स्थान रखते हैं। यदि अधिकतम एवं न्यूनतम उत्पादकता का अंतर देखा जाये तो वह भी बहुत अधिक है, जो इस बात को दर्शाता है कि जिन प्रदेशों में फलों की उत्पादकता बहुत कम है वहां उनकी उत्पादकता को बढ़ाने की ज्यादा संभावनाएं हैं। वैसे प्रत्येक प्रदेश की जलवायु, मृदा एवं प्रबंधन की अपनी सीमाएं होती हैं, जिसके कारण उत्पादकता मुख्य रूप से प्रभावित होती है।

आज विश्व पटल पर फलों के उत्पादन में भारत का प्रमुख स्थान है। भारत की स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न स्तर पर किए गए संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप देश में सुनहरी क्रांति परिलक्षित हुई है। यह क्रांति बागवानी में नये नये शोधों जिनमें उन्नतशील प्रजातियों का विकास, टिश्यू कल्चर/कलमी पौधों का रोपण, समस्याग्रस्त भूमि एवं जैविक कारकों के लिए मूलवृंतों का प्रयोग, पौधों की सधाई व काटछांट द्वारा छत्रक प्रबंधन, सघन बागवानी, बूंद-बूंद विधि से सिंचाई एवं सिंचाई के साथ उर्वरकों के अनुप्रयोग, उचित पोषण आदि से संभव हुई है। कीट एवं रोगों की रोकथाम के लिए समन्वित प्रबंधन करना जरूरी है, जिसमें कीटों एवं रोगों को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रखना होता है। इसमें प्रयुक्त तकनीकियों में जलवायु अनुसार फसल व किस्मों का चुनाव, बीजोपचार, पौध उपचार, बगीचे की गहरी ग्रीष्मकालीन जुताई, समय पर निराई-गुड़ाई, मित्र कीटों का संचरण, जैव व रासायनिक जीव व रोगनाशकों का अनुप्रयोग आदि हैं। फल उत्पादन में हुई अभूतपूर्व वृद्धि में उन्नत प्रजातियों का प्रमुख योगदान है। कुछ व्यावसायिक फल वृक्षों की उन्नतशील प्रजातियों को सारणी-2 में दर्शाया गया है।

फलों का उत्पादन जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण तुड़ाई उपरांत उनका रखरखाव करना भी है। आज भी भारत में

सारणी 2. प्रमुख फल एवं उनकी किस्में

क्र.सं.	फल फसल	उन्नत किस्में
1.	आम	लंगड़ा, चौसा, दशहरी, आम्रपाली, मल्लिका, पूसा श्रेष्ठ, पूसा पीताम्बर, पूसा अरुणिमा, पूसा सूर्या, पूसा प्रतिभा, पूसा लालिमा, अर्का अनमोल, अर्का सुप्रभात,
2.	अमरूद	इलाहाबाद सफेदा, सरदार ग्वावा, ललित, श्वेता, पंत प्रभात, अर्का पूर्णा, अर्का रश्मि, अर्का किरण, अर्का मृदुला
3.	अंगूर	फ्लेम सीडलेस, थामसन सीडलेस, रेड ग्लोब, पूसा स्वर्णिका, पूसा सीडलेस, ब्यूटी सीडलेस, पूसा नवरंग, शरद सीडलेस, बेंगलुरु ब्लू
4.	पपीता	हनी ड्यू, कुर्ग हनी ड्यू, वाशिंगटन, ताइवान, पूसा नन्हा, पूसा डिलिशियस, पूसा जायन्ट, पूसा मजेस्टी, कोयम्बटूर-6, कोयम्बटूर-7, सूर्या, अर्का प्रभात
5.	नीबू	कागजी कलां, पंत लेमन 1, यूरेका, प्रमालिनी, विक्रम, साई शर्बती, फूले शर्बती, पूसा अभिनव, पूसा उदित
6.	मौसम्बी	वाशिंगटन नेवल, माल्टा ब्लड रेड, जाफा, वेलेंसिया लेट, सथगुडी, हेमलिन, पूसा राउण्ड, पूसा शरद
7.	बेर	गोला, उमरान, बनारसी कडाका, कैथली, थार सेविका, गोमा कीर्ति
8.	बेल	एन बी-5, एन बी-9, पंत शिवानी, पंत उर्वशी, पंत अपर्णा, पंत सुजाता, थार नीलकंठ, थार दिव्या, गोमा यशी
9.	सेब	रेड डिलिशियस, गोल्डन डिलिशियस, स्टार्किंग डिलिशियस, रिचारैड, ग्रैनी स्मिथ, यलो न्यूटन, समर क्वीन, अन्ना
10.	केला	ड्वार्फ कवेंडिस, कदली, रोबस्टा, नेपूवन, पूवन, रस्थाली
11.	लीची	शाही, बेदाना, स्वर्ण रूपा, कलकतिया, अर्ली सीडलेस, मुजफ्फरपुर, देहरादून, सहारनपुर, चाइना
12.	अनार	भगवा, जालौर सीडलेस, रूबी, मृदुला, गणेश, सोलापुर लाल, सुपर भगवा

अनार

भावी सम्भावनाएं

- फल उत्पादन की नवीनतम तकनीकों के साथ सरकार की विभिन्न योजनाएं जैसे-मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फसल बीमा योजना, राष्ट्रीय किसान विकास योजना, प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, एमआईडीएच (समन्वित उद्यानिकी विकास मिशन) आदि के सम्मिलित प्रयासों से भारत में फल उत्पादन को बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं।
- विश्व परिदृश्य में आज पोषण सुरक्षा को लेकर जागरूकता बढ़ी है। ताजे फलों जैसे-आम, पपीता, सेब, केला, अंगूर, अनार, लीची, अमरूद, मौसम्बी आदि एवं सूखे मेवे जैसे-काजू, बादाम, अखरोट, पिस्ता, छुहारा, अंजीर, किशमिश आदि की मांग दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। अतः देश में फल उत्पादन को और बढ़ाने की आवश्यकता है, जिससे जन मानस की पोषण की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।
- विश्व बाजार में भारत की उपस्थिति तो है किन्तु इसे और बढ़ाने की आवश्यकता है। आज भारत भले विश्व के कुल फल उत्पादन में 12.8 प्रतिशत का योगदान दे रहा है किन्तु विश्व व्यापार में उसकी हिस्सेदारी लगभग 2 प्रतिशत ही है। इसके अतिरिक्त विश्व बाजार के मानकों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे फलों का निर्यात करके ज्यादा से ज्यादा विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके।
- भारत में आज 6.51 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल पर फलों की खेती होती है, किन्तु इसको अच्छी भूमि पर और बढ़ाना संभव नहीं दिखता है। जनसंख्या वृद्धि, विभिन्न उद्योगों का प्रसार एवं शहरीकरण के कारण खेती योग्य जमीन की उपलब्धता निरंतर घटती जा रही है। अतः आवश्यक है कि देश में अनुपयोगी भूमि जैसे-शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्र, असिंचित दशा वाले क्षेत्र, ऊसर, बीहड़ आदि क्षेत्रों का उपयोग बागवानी को बढ़ावा देने के लिए किया जाये।
- आज जलवायु परिवर्तन भी एक प्रमुख समस्या है। इससे निपटने के लिए अन्य उपायों के साथ-साथ फलों की खेती एवं फल आधारित वानिकी को विशेष बढ़ावा देने की आवश्यकता है। कुछ फल वृक्ष जैसे-आंवला, बेल, बेर, जामुन, चिरोंजी, इमली, शरीफा, अंजीर, करौंदा, फालसा, लसोड़ा, खिरनी, जंगल जलेबी, कैंथ, शहतूत आदि शुष्क क्षेत्र में सीमित सिंचाई के साथ तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में असिंचित दशा में भी सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। इन फल वृक्षों में विपरीत जलवायुवीय दशाओं को सहन करने की क्षमता होती है।
- किसानों की आमदनी बढ़ाने में फलों की खेती विशेष लाभदायक सिद्ध होगी। इसके लिए किसान, वैज्ञानिक तरीके से फलों की खेती करके इस चुनौती का सामना कर सकते हैं। फल के बगीचों में एक वर्षीय फसलों को समाहित करके तथा मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन आदि से भी आमदनी बढ़ा सकते हैं। फलों के परिरक्षित उत्पादों को घरेलू स्तर पर बनाकर भी आमदनी को आसानी से बढ़ाया जा सकता है।
- बागवानी के साथ-साथ द्वितीयक उद्यमों जैसे-नर्सरी, मौन पालन, पैकिंग, डिब्बाबंदी, वेक्सिंग प्रसंस्करण व संशोधन, कागज व गत्ते के बक्से आदि से भी आमदनी बढ़ाने में सफलता मिलती है। खेती की पुरानी परंपरागत विधियों से हटकर नई पहल करने की जरूरत है, जिसमें अनुबंध खेती से त्रिपक्षीय लाभ (किसान, कृषि उत्पाद क्रेता, वित्त पोषक संस्थाएं) के अवसर मिलेंगे। इसके साथ ही ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर पलायन भी रुकेगा तथा बागवानी फसलों के उत्पाद निर्यात को बल मिलेगा, जो भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में सहायक सिद्ध होगा।
- नई शोध उपलब्धियों जैसे-संेसर बेस्ड तकनीक, ड्रोन उपयोग, डिसीज डायग्नोस्टिक तकनीक, टिश्यू कल्चर द्वारा पौध बनाना, सघन बागवानी, छत्रक प्रबंधन, बूंद-बूंद सिंचाई के साथ उर्वरकों का प्रयोग, बायोपेस्टिसाइड का उपयोग, स्मार्ट पैकेजिंग, प्रसंस्करण में ऑटोमेशन, ई-मार्केटिंग आदि के प्रयोग से फल उत्पादन को बढ़ावा देने की अपार संभावनाएं हैं।

अनार का बाग

बागवानी फसलों का तुड़ाई उपरांत लगभग 20 प्रतिशत नुकसान हो जाता है। इसको बचाने के लिए आवश्यक है कि फलों की तुड़ाई उपयुक्त समय एवं उचित तरीके से करनी चाहिए। तुड़ाई उपरांत उनका श्रेणीकरण करके सही प्रकार के डिब्बों में पैकिंग करें। इस प्रकार फलों को बाजार में विक्रय हेतु भेजते समय कोई नुकसान न हो। फलों के ताजेपन को बनाये रखने के लिए उनका उचित भंडारण एवं बाजार भेजते समय वातानुकूलित वाहन का प्रयोग करना चाहिए। डिब्बों पर उचित प्रकार से छपाई होनी चाहिए, जिसमें फल की प्रजाति, पैकिंग का दिनांक एवं प्रयोग समयावधि अंकित होनी चाहिए। यहां यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि भारत में फलों का प्रसंस्करण बहुत कम मात्रा में किया जाता है और यहां लोगों द्वारा ताजे फलों को खाना ज्यादा पसंद किया जाता है। बाजार में एक साथ फलों की आवक बढ़ने से यदि उनका विक्रय न हुआ तो उनके सड़ने की समस्या ज्यादा हो जाती है। इसलिए आवश्यक है कि जब फलों की अधिकता हो और उनके विक्रय की दर कम हो, उस समय फलों को खरीदकर उनके विभिन्न परिरक्षित उत्पाद बनाने चाहिए। परिरक्षित उत्पादों में अचार, मुरब्बा, स्क्वैश, जैम, जेली, कैंडी आदि बना करके डिब्बा बंदी करनी चाहिए। इसके अलावा फलों के ताजे गूदों को भी भंडारित किया जाता है एवं सुखाकर पाउडर के रूप में भी परिरक्षित किया जा सकता है। आजकल त्यौहारों के अवसर पर लोगों में ताजे फल, सूखे मेवे एवं फलों से बनी विभिन्न प्रकार की परिरक्षित मिठाइयों के आदान-प्रदान का प्रचलन बढ़ा है। भविष्य में परिरक्षित उत्पादों की मांग और ज्यादा बढ़ने की संभावना है। भारत में आज भी फलों के समुचित भंडारण की व्यवस्था नहीं है, जिस पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है।

फल प्रसंस्करण उद्योग की स्थिति एवं संभावनाएं

नीलिमा गर्ग*

फल एवं सब्जियां, भारत की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हमारे समग्र कृषि उत्पादन में बागवानी फसलों की हिस्सेदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। फल और सब्जियों के उत्पादन में हम विश्व में दूसरे नंबर पर हैं। भारत में 15 प्रकार के कृषि जलवायु क्षेत्र हैं, जिनमें विश्व की सभी प्रकार के फल एवं सब्जियां उत्पन्न की जाती हैं। हमारे देश में फलों की प्रचुर विविधता पाई जाती है, जिनमें केला, आम, नीबू प्रजाति के फल, अमरूद, अंगूर, अनन्नास और सेब प्रमुख हैं। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और गुजरात प्रमुख फल उगाने वाले राज्य हैं। फसल अच्छी होने की स्थिति में थोक मूल्यों में भारी गिरावट आ जाती है। इससे किसानों को आर्थिक हानि होती है। इस प्रकार कभी-कभी तो उनकी अपनी फसल को मंडी तक ले जाने का किराया भी नहीं निकलता, जिससे वे पूरी तरह से तैयार फसल को खेत में ही नष्ट कर देते हैं। भाकृअनुप-केन्द्रीय कटाई उपरान्त अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान के एक आकलन के अनुसार लगभग 7-12 प्रतिशत फल एवं सब्जियों की उपज उपभोक्ता तक पहुंचने से पहले ही बर्बाद हो जाती है। इससे हजारों करोड़ रुपये का नुकसान होता है। यह स्थिति लगभग पूरे देश में व्याप्त है। ऐसे में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र किसानों को उचित मूल्य दिलवाने के साथ फल एवं सब्जियों के नुकसान को कम करता है व देश की आर्थिक प्रगति में योगदान करता है।

खाद्य प्रसंस्करण वह विधा है, जिसके द्वारा प्राथमिक कृषि उपज जैसे- अनाज, फल, सब्जी इत्यादि को विभिन्न उपचारों द्वारा उसी अथवा अन्य रूप में संरक्षित करके स्वाद में वृद्धि की जाती है। ऐसे उत्पादों की पौष्टिकता एवं खाद्य सुरक्षा बरकरार रहती है तथा इन्हें लंबे समय तक भंडारित किया जा सकता है। प्रसंस्करित उत्पादों की बढ़ती लोकप्रियता के निम्नलिखित कारण हैं :

- बढ़ती युवा संख्या
- बढ़ता शहरीकरण
- बढ़ती आय
- उपभोक्ता की बढ़ती सम्पन्नता एवं जीवन शैली में बदलाव
- लोगों की भोजन की आदतों में परिवर्तन
- सुविधाजनक खाद्य जैसे-स्प्रे ड्राइड अथवा फ्रीज ड्राइड उत्पाद, जूस

*प्रभागाध्यक्ष, भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

क्लस्टर विकास

फल उत्पादन क्षेत्र में किसान उत्पादक संगठनों को बढ़ावा देकर समूह बनाये जाते हैं। जैसे-प्रतापगढ़ में आंवला, अनंतपुर में मोसम्बी, नागपुर में संतरा, पंजाब में किन्नू और चित्तूर में आम आदि। इन समूहों के भीतर मॉडल खाद्य प्रसंस्करण इकाइयां स्थापित की जाती हैं। ये विभिन्न चरणों में किसानों से कच्चा माल लेती हैं और किसानों के लिए कुशल बाजार लिंकेज प्रदान करती हैं तथा तैयार उत्पाद को बाजार में संपर्क प्रदान करती हैं।

केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान द्वारा विकसित फलों के अभिनव उत्पाद

कन्सन्ट्रेट्स, ड्राइडइन्स्टेंट सूप्स, रिकंस्टीट्यूटेड फ्रूट्स, जूस तथा सेल्फ कुकिंग आहार आदि की बढ़ती मांग

- आधुनिक तकनीक द्वारा बनाए गए नए उच्च गुणवत्तायुक्त खाद्य उत्पाद
- सुपर मार्केट्स का विकास

जैसे-जैसे मांग में बदलाव हो रहा है, प्रसंस्करित खाद्य पदार्थों का बाजार बढ़ रहा है। ऐसे में प्रसंस्करण उद्योग इस अभूतपूर्व अवसर को भुनाने के लिए तैयार है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें कई चुनौतियों को पार करना होगा। फल प्रसंस्करण उद्योग की बड़ी चुनौतियों में से एक फलों की लगातार उपलब्धता न होना है। यहां का अधिकांश फल ताजा बेचा जाता है और प्रसंस्करण के लिए फल की आपूर्ति नाकाफी है। ऐसे में प्रसंस्करण उद्योग अपने ग्राहकों को लगातार आपूर्ति नहीं दे सकते हैं। इससे प्रसंस्करण इकाइयों की अनिश्चितता बनी रहती है और कम क्षमता का उपयोग होता है। इससे फल प्रसंस्करण उच्च लागत वाला उद्योग हो जाता है। विश्व स्तर पर संसाधित की जाने वाली तीन बड़ी फसलें टमाटर, संतरा और सेब हैं। भारत, इन सभी कृषि उत्पादों के शीर्ष 5 उत्पादकों में शामिल है, लेकिन इनके प्रसंस्करण में हमारी उपस्थिति नगण्य है। हमारी फसलों की पूर्व प्रसंस्करण कीमतें वैश्विक कीमतों की तुलना में अधिक हैं। देश में यहां प्रंसस्करण के बड़े उद्योग की संख्या काफी कम है। हमारे कच्चे माल की गुणवत्ता अपेक्षाकृत कम है तथा कोल्ड चेन और वेयर हाउसिंग सुविधाओं का अभाव है। परिवहन के विभिन्न तरीकों (सड़क, रेल, वायु) के बुनियादी ढांचे में कमियां हैं तथा तापमान अनुकूलित वाहन अपर्याप्त हैं। पर्याप्त कुशल श्रमिकों व तकनीकी विशेषज्ञों की कमी, कम पारिश्रमिक, बदलती ग्राहक वरीयताओं को समझने के कौशल में कमी आदि कुछ अन्य चुनौतियां हैं। इनका सामना करने के लिए निम्न उपाय उपयोगी सिद्ध होंगे।

प्रसंस्करित फल उत्पादों की बढ़ती वैश्विक मांग

विश्व बाजारों में फल स्प्रेड जैसे-जैम जेली इत्यादि में स्वाद, रंगों व सुगंध की एक विस्तृत श्रृंखला उपलब्ध है। फल मिश्रित चॉकलेट व अन्य चबाने वाले पदार्थ, फलों के टुकड़े मिश्रित दही, दूध, पनीर तथा मक्खन भी बाजार में बहुलता से मिल रहे हैं। इसके अतिरिक्त फलों के कन्संट्रेट, फलों के जूस, प्यूरी इत्यादि भी बाजार में काफी लोकप्रिय हैं। सूखे फल भी सुविधाजनक, अत्यधिक पोर्टेबल और टिकाऊ हैं। फल और इनके कम वसायुक्त उत्पाद, विटामिन/खनिज फोर्टिफाइड उत्पाद, कम चीनीयुक्त उत्पाद, कैलोरीमुक्त तथा कम कैलोरीयुक्त उत्पाद उपभोक्ताओं को भा रहे हैं। भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा फलों के अभिनव उत्पाद तैयार किये गए हैं। इनमें कच्चे आम का साइडर, आंवला साइडर, अमरूद साइडर, बेल साइडर, आम वाइन, बेल वाइन, महुआ वाइन, शहतूत वाइन, प्रोबायोटिक पेय व अचार, आंवला प्राश, चीनीरहित जामुन पेय, जामुन माउथ फ्रेशनर, आम का सिरका, आंवले का सिरका, बेल का सिरका, अंगूर का सिरका, जामुन का सिरका, गन्ने का आंवलायुक्त सिरका, बेल बार, कच्चे आम का बार, जामुन का बार आदि शामिल हैं। इनके अलावा फल अपशिष्ट के उपयोग द्वारा निम्नलिखित मूल्यवर्धित उत्पाद बनाये गए : आम का उबटन, आम का लिप बाम, आम के रेशेयुक्त बिस्किट, आम व अमरूद के अपशिष्ट से बना मछली का चारा, आम के छिलके व पत्तों की खाद, आम के छिलके से पेक्टिनेज व सेलुलोज तथा कर्नल से एमाइलेज, आम के छिलके से निर्मित उच्च प्रोटीनयुक्त पशुओं का चारा, आम की गिरी का तेल, आंवले का रेशेयुक्त बिस्किट, आंवला चाय, जामुन चाय, चाय आदि।

फल किस्मों में सुधार

उच्च रस और अधिक ब्रिक्सयुक्त वाले बेहतर फल किस्मों की खेती आज की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। शुरुआती, मध्यम और देर से उपज देने वाली किस्मों का नियमित उत्पादन, आवश्यकता से अधिक उत्पादन (ग्लट) को रोकता है और कीमतों को स्थिर करके बाजार जोखिम को कम करता है।

उत्पादकता में वृद्धि

अल्ट्रा हाई डेंसिटी प्लांटेशन के माध्यम से बेहतर भूमि उपयोग करके उत्पादकता में वृद्धि की जाती है। इसमें पारंपरिक खेती की तुलना में फलों के पेड़ों को ज्यादा पास-पास लगाया जाता है। उदाहरण के तौर पर आम की पारंपरिक खेती के 40 पेड़ों की तुलना में 600 पेड़ लगाए जाते हैं।

कृषि व प्रसंस्करण संबंधी सूचनाओं एवं संस्तुतियों का किसानों में प्रसार

कृषि अनुसंधान में हुई उन्नति किसानों तक तेजी से पहुंचनी चाहिए। किसानों को नई किस्मों को उगाने के लिए पानी, पोषण और जलवायु की जानकारी दी जाने की आवश्यकता है। उन्हें कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग के प्रतिकूल प्रभावों के खिलाफ चेतावनी दी जानी चाहिए। यह न केवल उपज और गुणवत्ता को प्रभावित करता है, बल्कि स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी चिंताओं को बढ़ाता है। किसानों

तेजी से बढ़ रहा निर्यात

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग देश के कुल खाद्य बाजार का लगभग 32 प्रतिशत हिस्सा है और उत्पादन, खपत, निर्यात और अपेक्षित वृद्धि के मामले में पांचवें स्थान पर है। पिछले दशक में भारतीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और इस वर्ष 2020 तक 480 अरब डॉलर तक पहुंचने की उम्मीद है। यह उद्योग देश के विनिर्माण जीडीपी में 14 प्रतिशत, निर्यात में 13 प्रतिशत और कुल औद्योगिक निवेश में 6 प्रतिशत योगदान देता है। वर्ष 2018-19 के दौरान भारत का प्रसंस्करित खाद्य निर्यात 31,111.90 करोड़ रुपये था। इसमें आम का गूदा 657.67 करोड़ रुपये, प्रसंस्करित सब्जियां 2473.99 करोड़ रुपये, खीरा एवं ककड़ी (सूखी एवं संरक्षित) 1436.08 करोड़ रुपये, प्रसंस्करित फल, जूस और मेवे 2804.97 करोड़ रुपये आदि का निर्यात किया गया। भारतीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मुख्यत: यूरोप, खाड़ी देशों, जापान, सिंगापुर, थाइलैण्ड, मलेशिया और कोरिया आदि देशों को निर्यात करता है।

को प्रसंस्करण संबंधी जानकारी देने के लिए भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। संस्थान द्वारा आम, अमरूद तथा आंवला के प्रसंस्करण को बढ़ावा देने के लिए आठ मोबाइल ऐप्स विकसित किये गए हैं, जो हिंदी तथा अंग्रेजी भाषा में हैं। इन ऐप्स को गूगल प्ले स्टोर से डाउनलोड किया जा सकता है। हिंदी भाषा के ऐप की मदद से दुनियाभर के हिंदी भाषी लोग घरेलू, छोटे और बड़े स्तर पर आम, अमरूद तथा आंवला के उत्पाद बना सकते हैं। इनकी मदद से ग्रामीण स्तर पर भी गुणवत्तायुक्त उत्पाद बनाए जा सकते हैं। ये ग्रामीण महिलाओं/युवाओं को स्वावलंबी बनाने के साथ साथ फलों की तुड़ाई उपरांत नुकसान को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

उत्पाद विविधता को बढ़ावा

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, कृषि क्षेत्र और उपभोक्ता के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह शहरी और ग्रामीण उपभोक्ताओं को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करता है। बुनियादी पोषण समस्या को संबोधित करने से लेकर उत्पाद विविधता के विकल्प प्रदान करने की आवश्यकता पर काम करता है। पारंपरिक रूप से फल स्वस्थ उत्पादों के रूप में माना जाता है। उपभोक्ता, सुविधा के लिए अधिक मूल्य का भुगतान करने के लिए तैयार हैं और फल सबसे पसंदीदा सुविधाजनक खाद्य उत्पादों में से एक हैं। उपभोक्ताओं द्वारा भी स्वस्थ फल उत्पादों में विविधता और स्वाद की मांग की जाती है। हमारी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण विश्व के सभी प्रकार के फल भारत में उपजाए जाते हैं। प्रसंस्करण में हम पूरे विश्व से पिछड़े हुए हैं तथा मुख्यत: जैम जैली, अचार, मुरब्बा, स्क्वैश इत्यादि उत्पादों पर ही विशेष ध्यान देते हैं। कुछ रूटीन प्रकार के उत्पादों के अलावा हमारे यहां नए अभिनव उत्पादों को तैयार करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। मार्केट साइज की ताकत को नियंत्रित करने के लिए इनोवेशन को अपनाना होगा। न्यूनतम संसाधित फल, डिब्बाबंद फल, जमे हुए फल, फलों के रस और पेय रस, फल कन्फेक्शनरी, फल स्प्रेड, ऊर्जायुक्त और खेल पेय, साइडर और फलयुक्त मादक पेय (उदाहरण के लिए, शराब, आसुत शराब और बियर आदि) लोकप्रिय उत्पाद हैं। अन्य नए उत्पादों में फलयुक्त अनाज, शिशु खाद्य पदार्थ और पेय तथा बेकरी खाद्य उत्पाद जैसे-स्नैक बार, नाश्ता आदि शामिल हैं। जमे हुए फलों के उत्पादों को उप व्यंजन, फल सलाद, मिठाई और नाश्ते या बेकिंग के तौर पर प्रयोग किया जाता है।

कुल मिलाकर, फलों के उत्पादों से बिक्री बढ़ाने के लिए फल आपूर्तिकर्ताओं और निर्माताओं के पास विभिन्न प्रकार के उत्पाद विकास करने और बाजार के अवसर हैं। इसको भुनाने के लिए भारतीय उपभोक्ताओं की पसंद, बदलते स्वाद के साथ-साथ पारंपरिक उत्पादों को नए एवं विविध रूप देने की आवश्यकता होगी। विदेशी उत्पादों और भारतीय व्यंजनों के कॉकटेल उत्पाद भी अधिक लोकप्रिय होंगे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत में बहुत बड़ी मात्रा में विदेशों से प्रसंस्करित खाद्य आयात किए जाते हैं। इस क्षेत्र में कारोबारी निवेश करके बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत की जा सकती है तथा युवाओं एवं महिलाओं के लिए रोजगार की अपार संभावनाएं सृजित की जा सकती हैं। कोरोना के कारण उत्पन्न बेरोजगारी का सामना करने के लिए यह एक अच्छा अवसर है। ग्रामीण क्षेत्रों में सूक्ष्म, कुटीर एवं लघु प्रसंस्करण इकाइयां स्थापित करके गांव के लोगों का शहर की तरफ पलायन रोका जा सकता है। ■

भाकृअनुप की लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' जुलाई, 2020 अंक के प्रमुख आकर्षण

- आमदनी बढ़ाने में एकीकृत कीट प्रबंधन है उपयोगी
- मक्का द्वारा फसल विविधीकरण
- चिया है पोषण से भरपूर फसल
- पशुओं के लिए पोषक आहार
- गन्ना के प्रमुख छिद्रक कीटों की पहचान
- बकरी पालन से बढ़ाएं आमदनी
- हरी खाद है बेहद उपयोगी
- कृषि का भविष्य है कृषि ड्रोन
- 'श्री धान सघनता पद्धति'
- जीवाणु खाद से जुड़ी कुछ आवश्यक बातें
- अंजन और धामन घास की बीज उत्पादन तकनीक
- सौर ऊर्जा पम्प से सिंचाई
- मृदा को स्वस्थ बनाने की बढ़ती चुनौती
- कृषि क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस तथा रोबोटिक्स
- गेहूं में खरपतवार नियंत्रण की आधुनिक विधियां
- संरक्षित खेती पर आधारित मक्का उत्पादन

संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012 (दूरभाष: 25843657)

'खेती' पत्रिका के अंक वेबसाइट www.icar.org.in पर देखे जा सकते हैं।

फल विशेषांक

लोकाट है पोषण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए वरदान

अजय कुमार त्रिवेदी*, **सुशील कुमार शुक्ला***, **घनश्याम पाण्डेय*** और **देवेन्द्र पाण्डेय***

लोकाट *(इरियोबोट्रिया जैपोनिका)* को चाइनीज प्लम भी कहा जाता है। यह रोजेसी कुल का एक सदाबहार पौधा है। लोकाट की उत्पत्ति चीन में हुई थी। कुछ वैज्ञानिक इसकी उत्पत्ति जापान में मानते हैं। इसकी अधिकतर किस्में चीन या जापान में ही विकसित हुई हैं। भारत में लोकाट का आगमन कब हुआ इसके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन प्रारंभ में इसे राजकीय वानस्पतिक उद्यान सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) में लगाया गया था। यहीं से यह देश के अन्य भागों में फैला। लोकाट की बागवानी मुख्य रूप से उत्तराखंड, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश व असोम के कुछ भागों तक ही सीमित रही और अपार संभावनाओं वाला यह फल केवल इन्हीं क्षेत्रों के स्थानीय बाजारों तक सीमित रहा। जब लोकाट के फल बाजार में आते हैं उस समय बाजार में अन्य स्वादिष्ट एवं प्रचलित फल जैसे कि आम, लीची आदि बाजार में उपलब्ध होते हैं। इसके कारण बाजार प्रतिस्पर्धा में यह पीछे रह जाता है। यद्यपि लोकाट की बागवानी का उचित विकास नहीं हो पाया, लेकिन कम ऊंचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों तथा कम गर्मी वाले मैदानी क्षेत्रों के लिए यह एक वरदान है।

लोकाट के पौधे की लंबाई 3-8 मीटर तक होती है। पत्तियों की सुंदरता के कारण इसे एक शोभाकारी पौधे के रूप में भी उगाया जाता है। इसकी पत्तियां लगभग 10-25 सें.मी. लंबी तथा गहरे हरे रंग की होती हैं। लोकाट की बागवानी सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। जीवाश्मयुक्त उपजाऊ गहरी दोमट मृदा, जिसमें जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो, इसके लिए उपयुक्त होती है। कंकरीली पथरीली, ऊसर भूमि इसके लिए उपयुक्त नहीं है। लोकाट के पौधे तथा इसके फलन पर वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। जिन क्षेत्रों में तापमान बहुत कम या अधिक होता है वह क्षेत्र इसकी बागवानी के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। इन क्षेत्रों में इसे केवल एक शोभाकारी पौधे के रूप में उगाया जाता है।

लोकाट के पौधों को सिंचाई की अधिक आवश्यकता नहीं होती है। इसका फल पुष्पन से 90 दिनों के पश्चात

*प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, पोस्ट-काकोरी, लखनऊ-226101 (उत्तर प्रदेश)

परिपक्व हो जाता है। लोकाट का फल 3-5 सें.मी. लंबा, हल्के पीले रंग का गूदेदार होता है। इसमें एक से पांच तक भूरे रंग के बीज पाये जाते हैं। इसके फल को छिलका उतारकर खाया जाता है, जो बहुत स्वादिष्ट होता है। यह फल स्वाद में आडू, सिट्रस तथा आम के स्वाद की अनुभूति करवाता है। लोकाट को तोड़ने के बाद 1-2 सप्ताह तक आसानी से कोल्ड स्टोर में भंडारित किया जा सकता है।

पोषण सुरक्षा के लिए उपयोगिता

खाद्य सुरक्षा के साथ ही स्वास्थ्य के लिए पोषण सुरक्षा भी आवश्यक है। इसके लिए फलों का सेवन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। अलग-अलग फलों में पोषक तत्वों की उपलब्धता भी अलग होती है। लोकाट का फल पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसमें विटामिन 'ए', पोटेशियम, मैंगनीज की प्रचुर मात्रा पायी जाती है। इसमें सोडियम कम मात्रा में पाया जाता है। इसके फल में शर्करा व पेक्टिन की मात्रा बहुतायत में पायी जाती है। इसके कारण इसका उपयोग जैम-जैली व कैण्डी बनाने में किया जाता है। लोकाट के प्रति 100 ग्राम ताजे फल में पाये जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वों को सारणी में दर्शाया गया है।

लोकाट की पत्तियां जहां औषधीय गुणों से भरपूर होती हैं, वहीं इसके फल व फूल भी बहुत अधिक आर्थिक महत्व रखते हैं। इसके फल में शर्करा बहुत अधिक मात्रा में पायी जाती है, जिसके कारण इसका उपयोग शराब के उत्पादन में भी किया जाता

पौधशाला में तैयार लोकाट के पौधे

लोकाट का पुष्पक्रम

स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए उपयोगिता

लोकाट की पत्तियां दिखने में जितनी आकर्षक लगती हैं, उससे कहीं ज्यादा इनमें गुण होते हैं। इसकी पत्तियों के कुछ गुण निम्नलिखित हैं:

- **प्रतिऑक्सीकारक के रूप में:** लोकाट की पत्तियों के रस का सेवन करने से शरीर में लाभदायक प्रतिऑक्सीकारक उत्पन्न होते हैं। इनसे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- **औषधीय महत्व:** इसकी पत्तियों से बने काढ़े के सेवन से खांसी और सर्दी से राहत मिलती है। काढ़े का नियमित सेवन हमारे शरीर के पाचन-तंत्र के लिए लाभदायक होता है।
- **कैंसर में उपयोग:** लोकाट की पत्तियों में कैंसर प्रतिरोधी तत्व पाये जाते हैं। यदि त्वचा कैंसर का प्रारम्भिक अवस्था में पता चल जाए तो इसकी पत्तियों के रस का सेवन अति लाभदायक होता है। लोकाट की पत्तियों में ऐसे तत्व पाये जाते हैं, जो कैंसर कोशिकाओं को फैलने से रोकते हैं। कैंसर के उपचार के लिए सामान्यत: कीमोथेरेपी का उपयोग किया जाता है, पर इसका दुष्प्रभाव शरीर की स्वस्थ कोशिकाओं पर पड़ता है। लोकाट की पत्तियों के सेवन से इस दुष्प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।
- **एच.आई.वी. में लाभदायक:** इसकी पत्तियों में 2 अल्फा-हाइड्राक्सीयूरोसिल अम्ल पाया जाता है। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि एच.आई.वी. वायरस इस अम्ल की उपस्थिति में नहीं पनप पाता है।
- **विषाणुरोधी गुण:** इसके पत्तों में कई ऐसे रासायनिक तत्व पाये जाते हैं, जो विषाणु की वृद्धि को रोकते हैं। इसमें मुख्य रूप से मैगास्टामाइन ग्लाइकोसाइड तथा पॉलीफीनाल हैं, जो विषाणु से होने वाले रोगों की रोकथाम में सहायक हैं। लोकाट अन्य विषाणुजनित रोगों के साथ-साथ कोरोना जैसी महामारी तथा भविष्य में इस तरह की होने वाले अन्य रोगों के प्रभाव को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।
- **त्वचा रोगों में लाभदायक:** लोकाट में कई ऐसे गुणों का अध्ययन किया गया है, जो त्वचा के रोगों में लाभदायक हैं। यह मुख्यत: हिस्टामाइन नामक पदार्थ के प्रभाव को कम करता है, जो त्वचा में होने वाले दर्द व शुष्कता के लिए उत्तरदायी है।
- **मधुमेह में उपयोगी:** मधुमेह से ग्रसित रोगियों के लिए लोकाट की पत्तियों का काढ़ा एक रामबाण औषधि है। इसकी पत्तियों में टरपीन नामक रासायनिक पदार्थ बहुतायत में पाये जाते हैं। टरपीन का मुख्य उदाहरण टोरमेन्टिक अम्ल है, जो हमारे शरीर में इंसुलिन के उत्पादन को बढ़ाता है। इससे मधुमेह कम हो जाता है।
- **उत्सर्जन तन्त्र के लिए गुणकारी:** इसकी पत्तियों में एमागेडिल नामक रसायन पाया जाता है। यह लीवर की कार्यक्षमता को बढ़ाता है तथा इसमें होने वाले विकारों को कम करता है। एमाइगेडिन हमारे शरीर से अवांछित तत्वों को उत्सर्जित करने में भी लाभदायक है।

रोपण योग्य ग्राफ्टेड लोकाट का पौधा

गुच्छे में लगे हुए लोकाट के फल

लोकाट के पौधे तैयार करने की विधि

इसके पौधे मुख्यत: बीज या कलम से तैयार किये जाते हैं। लोकाट के बीजों को बोने से पहले किसी प्रकार के उपचार की आवश्यकता नहीं होती है। बुआई के लिए परिपक्व फल से प्राप्त बीजों को सीधे प्रयोग किया जाता है। बीजू पौधों का प्रयोग कायिक प्रवर्धन में मूलवृन्त के रूप में किया जाता है। उन्नत किस्मों के प्रवर्धन हेतु कायिक विधियों का ही उपयोग करना चाहिए तथा व्यावसायिक किस्मों के बीजू पौधों का मूलवृन्त के रूप में प्रयोग करना चाहिए। इसे गूटी, क्लेफ्ट या वेज ग्राफ्टिंग, विनीर ग्राफ्टिंग, पैच या शील्ड बडिंग विधि से आसानी से तैयार किया जा सकता है। लोकाट की अच्छी बागवानी के लिए दो पौधों के बीच की दूरी 6 × 6 मीटर उपयुक्त मानी जाती है। इसकी बागवानी के लिए जैविक खाद उपयुक्त है। पुष्पन के समय नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक खाद का छिड़काव फायदेमन्द होता है। जब लोकाट के पौधे की ऊंचाई 8-10 फीट तक हो जाए, तब रासायनिक खाद एनपीके 6:6:6 के अनुपात में प्रयोग करनी चाहिए। अन्य फल वाले पौधों की भांति इसकी बागवानी में भी कटाई-छंटाई का विशेष महत्व है। कटाई-छंटाई का मुख्य उद्देश्य पौधे से सूखी व अवांछित शाखाओं को हटाने के साथ ही पौधे को उचित आकार देना होता है। इससे पौधे की उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

सारणी : लोकाट के प्रति 100 ग्राम ताजे फल में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व

पोषक तत्व		पोषक मान	पोषक तत्व		पोषक मान
ऊर्जा	:	47 किलो कैलोरी	**इलेक्ट्रोलाइट्स**		
कार्बोहाइड्रेट्स	:	12.14 ग्राम	सोडियम	:	1 मि.ग्रा.
प्रोटीन	:	0.43 ग्राम	पोटेशियम	:	266 मि.ग्रा.
वसा	:	0.20 ग्राम	मिनरल्स		
कोलेस्ट्रॉल	:	0 मि.ग्रा.	कैल्शियम	:	16 मि.ग्रा.
डाइट्री फाइबर	:	1.70 ग्राम	कॉपर	:	0.040 मि.ग्रा.
विटामिन्स			आयरन	:	0.28 मि.ग्रा.
फोलेट्स	:	14 माइक्रो ग्राम	मैग्नीशियम	:	13 मि.ग्रा.
नियासिन	:	0.180 मि.ग्रा.	मैग्नीज	:	0.148 मि.ग्रा.
पाइरिडाक्सिन	:	0.100 मि.ग्रा.	फॉस्फोरस	:	27 मि.ग्रा.
राइबोफ्लेविन	:	0.024 मि.ग्रा.	सेलेनियम	:	0.6 माइक्रो ग्राम
थाइमिन	:	0.019 मि.ग्रा.	जिंक	:	0.05 मि.ग्रा.
विटामिन 'ए'	:	1528 आईयू	स्रोत: यू.एस.डी.ए. नेशनल न्यूट्रिएन्ट डाटा बेस		
विटामिन 'सी'	:	1 मि.ग्रा.			

है। इससे बनने वाली शराब में सिट्रस का जूस भी मिलाया जाता है, क्योंकि इसमें अम्ल की मात्रा कम पायी जाती है। लोकाट के फूलों का प्रयोग इत्र बनाने में किया जाता है। इसकी यही उपयोगिताएं इसे पोषण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए वरदान बनाती

खाने योग्य लोकाट के फल

हैं। इसका उपयोग एक शोभाकारी एवं फल देने वाले पौधे तथा औषधीय पौधे के रूप में किया जाता है।

लोकाट की प्रमुख उन्नत किस्में

गोल्डन येलो, उन्नत गोल्डन येलो, पेल येलो, इम्प्रूव्ड पेल येलो, थेम्स प्राइड, टनाका, बेतिया सफेदा, बेतिया सुर्ख, लार्ज राउंड, कैलिफोर्निया एडवांस आदि किस्मों का प्रमुख तौर पर उल्लेख किया जा सकता है।

विभिन्न क्षेत्रों में पारंपरिक रूप से होने वाले फलों की उपज एवं गुणवत्ता में जलवायु परिवर्तन के कारण बदलाव देखा जा रहा है। अत: ऐसी परिस्थिति में भविष्य के लिए संभावित फलों के विषय में जानकारी का प्रचार-प्रसार तथा उनकी बागवानी को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण ही नहीं आवश्यक भी है। देश के विभिन्न सुदूर क्षेत्रों में कुपोषण की समस्या के साथ ही स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाओं की नितान्त कमी पायी जाती है। ऐसी परिस्थितियों में प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का सदुपयोग करके जीवनयापन आसान किया जा सकता है। लोकाट के विभिन्न प्रकार के उपयोगों के कारण ही इसे लंबे समय से विभिन्न क्षेत्रों में संरक्षित किया जाता रहा है। विभिन्न प्रवर्धन विधियों द्वारा इसका सतत् प्रचार-प्रसार भी किया जा रहा है। अत: यह आवश्यक है कि ऐसे फलों, वनस्पतियों एवं पौधों के विषय में उपयोगी जानकारियां अधिक से अधिक किसानों, बागवानों तथा जन सामान्य तक पहुंच सकें, जिससे लोग इनका सदुपयोग कर स्वस्थ जीवनयापन कर सकें।

वैज्ञानिक तरीके से लगाएं नये बाग

अनोप कुमारी*, महेश चौधरी** और **ए.एस. तेतरवाल*****

बागवानी फसलें पोषण सुरक्षा एवं आर्थिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण हैं। ये रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि करने में सहायक होती हैं। पिछले कुछ वर्षों में बागवानी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। कई प्रदेशों में बागवानी ने एक व्यवसाय का रूप ले लिया है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु के अनुसार अनेक प्रकार के फलदार पौधे लगाये जाते हैं। ये पौधे बहुवर्षीय प्रवृति के होने के कारण लंबे समय तक आमदनी देते रहते हैं। अक्सर यह देखने में आता है कि किसान नये बाग-बगीचे लगाते समय कई तरह की गलतियां कर बैठते हैं, जिनको बाद के वर्षों में सुधारना बहुत कठिन हो जाता है। इसका खामियाजा आने वाले वर्षों में भुगतना पड़ता है। नये बाग-बगीचों की स्थापना के समय जरूरी हो जाता है कि बागवान उपयुक्त योजना बनाकर उसको सही तरीके से क्रियान्वित करें ताकि अधिक आय अर्जित की जा सके।

फलदार बगीचों में दीर्घकालीन निवेश होने के कारण जगह का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे स्थान का चयन करें, जहां आवागमन के साधन सहजता से उपलब्ध होने के साथ ही श्रमिकों की उपलब्धता, पानी की व्यवस्था, जल निकास इत्यादि का समुचित प्रबंध हो। यह भी ध्यान रखें कि जहां बाग लगाना है वहां दो मीटर की गहराई तक सख्त कठोर कंकड़युक्त परत नहीं हो। भूमि का चुनाव करने के बाद उसका समतलीकरण करना भी आवश्यक है। खेत का ढलान 5-10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। भूमि की तैयारी के साथ ही सुरक्षा के लिए कांटेदार तार, जालीदार तार अथवा कांटेदार पौधे जैसे बोगनविलिया, करौंदा आदि लगा लें।

खेत रेखांकन

बाग लगाने के लिए ऐसी विधि का चयन करना आवश्यक है, जिसमें कम खर्चे व देखभाल के साथ ही ज्यादा फायदा मिल सके। इसके साथ मौजूद संसाधनों का भी उपयोग हो सके। मैदानी भागों में वर्गाकार विधि अधिक प्रचलित है। इसमें कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी बराबर रखी जाती है। इससे कृषि क्रियाएं अच्छी तरह से की जा सकती हैं व पौधों को भी पर्याप्त रोशनी मिलती रहती है।

गड्ढों की खुदाई

गड्ढों की खुदाई मई-जून में, जब तेज धूप रहती है, तब करनी चाहिए। इनका आकार पौधों के फैलाव व बढ़वार पर निर्भर करता है। बड़े आकार के फल वृक्षों (आम, आंवला, कटहल, बेल, जामुन, लीची आदि) के लिए 1 × 1 × 1 मीटर, मध्यम आकार

*कृषि विज्ञान केन्द्र, मौलासर-341506, नागौर (कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर-राजस्थान); **कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहपुर-शेखावटी-332301, सीकर (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर-राजस्थान); ***कृषि विज्ञान केन्द्र, भुज-गुजरात-370105 (काजरी, जोधपुर)

बाग लगाने में वैज्ञानिक तरीके अपनाने जरूरी

वाले फल वृक्षों जैसे-अमरूद, नीबूवर्गीय फल, सीताफल, अनार के लिए 0.75 × 0.75 × 0.75 मीटर व छोटे आकार वाले फल वृक्षों जैसे-पपीता, करौंदा आदि के लिए 0.5 × 0.5 × 0.5 मीटर आकार के गड्ढों की खुदाई करें। खुदाई के बाद गड्ढों को 30 से 40 दिनों तक तेज धूप में खुला ही छोड़ दें, जिससें मृदा में उपस्थित हानिकारक कीटाणु व जीवाणु समाप्त हो जायें। ऊपर की आधी मिट्टी में प्रति गड्ढे की दर से 20-25 कि.ग्रा. सड़ी गली गोबर की खाद के अलावा 150 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट, 500 ग्राम नीम खली व 50 ग्राम क्लोरोपाइरीफॉस धूल मिलाकर जमीन की सतह से 15-20 सें.मी. ऊपर तक भर दें व व्यवस्थित होने के लिये छोड़ दें। एक-दो बारिश के बाद मिट्टी जब नीचे बैठ जाए, उसके बाद रोपण का कार्य प्रारंभ करें। विभिन्न प्रकार के फलदार पौधों को लगाने की दूरियां सारणी-1 में दर्शायी गयी हैं।

सारणी 1. फलदार पौधों को लगाने की दूरी एवं प्रति हैक्टर पौधों की संख्या

फलदार पौधा	दूरी (पौधे से पौधे एवं कतार से कतार) मीटर में	पौधों की संख्या (प्रति हैक्टर)
नीबूवर्गीय फल	6 × 6	277
अमरूद	6 × 6	277
आम (बौनी किस्में)	5 × 5	400
आम (मध्यम आकार से बड़ी किस्में)	10 × 10	100
अनार	5 × 5	400
पपीता	1.5 × 2	4444 से 2500
आंवला	8 × 10	156 से 100
बेल	8 × 10	156 से 100
चीकू	10 × 10	100
लीची	10 × 10	100

पौधों को दें सही आकार

रोपण के प्रारंभिक वर्ष में ज्यादा कांट-छांट की आवश्यकता नहीं होती है। मूलवृंत से निकलने वाली नयी शाखाओं (कल्ले) को समय-समय पर निकालते रहना चाहिये। पौधा जब एक वर्ष का हो जाए, उसके बाद उचित आकार देने के लिए कटाई-छंटाई की जाती है। इससे पौधे के आकार को नियंत्रित रखा जा सकता है, ताकि बाग के समस्त सम-सामयिकी कार्य आसानी से किये जा सकें। इसके साथ ही पौधे के मजबूत ढांचे का विकास इस दौरान होता है। सही आकार देने से पौधे के भीतरी हिस्सों में सूर्य की रोशनी तथा वायु का संचरण अच्छा होता है और अच्छे फलन में सहायता मिलती है।

फल वृक्षों की किस्मों का चयन

फलदार पौधों का चुनाव मृदा के स्वभाव एवं जलवायु पर निर्भर करता है। चयन से पूर्व खेत की मृदा व पानी की जांच अवश्य करवा लें। सामान्य स्वभाव वाली मृदा में सभी प्रकार के फल वृक्ष आसानी से लगाये जा सकते हैं। अधिक लवणीय व क्षारीय भूमि में कुछ चयनित पौधे जैसे-बेर, आंवला, खजूर, बेल, लसोड़ा, करौंदा, जामुन आदि ही लगाये जा सकते हैं। फल वृक्ष के चुनाव के साथ ही उसकी सही प्रजाति का चयन भी जरूरी है ताकि अच्छी गुणवत्ता के उत्पाद के साथ ही अधिक पैदावार मिल सके। कुछ प्रमुख फलदार पौधों एवं उनकी किस्मों के नाम सारणी-2 में दिये गये हैं।

सारणी 2. फलदार पौधों की उपयुक्त किस्में

फल	किस्म
अमरूद	इलाहाबाद सफेदा, एल-49, ललित, श्वेता, अर्का अमूल्य, अर्का मृदुला, श्वेता, पंत प्रभात, हिसार सुर्खा, हिसार सफेदा
आम	आम्रपाली, मल्लिका, लंगड़ा, दशहरी, पूसा सूर्या, पूसा पीताम्बर, पूसा अरुणिमा, पूसा श्रेष्ठ
अनार	भगवा, गणेश, मृदुला, जालौर सीडलेस, अरक्ता
पपीता	ताइवान, पूसा डिलिशियस, पूसा मैजेस्टी, पूसा जॉयन्ट, पूसा ड्वार्फ, सूर्या, कुर्ग हनी ड्यू, पूसा नन्हा
चीकू	काली पत्ती, क्रिकेट बॉल, पी.के.एम.1
आंवला	गोमा ऐश्वर्या, बनारसी, हाथीझूल, चकिया, एन.ए.-4, एन.ए.-7, एन.ए.-10
बेल	गोमा यशी, थार दिव्य, थार नीलकंठ, एन.बी.-5, एन.बी.-9, पंत अपर्णा, पंत शिवानी, पंत उर्वशी, पंत सुजाता
नीबू	प्रमालिनी, विक्रम, कागजी कलां, साईं सरबती, पंत लेमन, एन.आर.सी.सी. नीबू-7, एन.आर. सी.सी. नीबू-8
बेर	थार सेविका, गोमा कीर्ति, थार भुज, गोला, सेब, मून्डिया, कैंथली, उमरान, टिकड़ी
लीची	शाही, स्वर्ण रूपा, बेदाना, रोज सेन्टेड, देहरादून, कलकतिया, चाइना, सबौर बेदाना

पौध लगाने का समय व तरीका

सदाबहारी पौधों जैसे-आम, नीबू, अमरूद, अनार, लीची आदि के लिये बरसात का समय (जुलाई-अगस्त) सर्वोत्तम होता है। पर्वतीय अथवा पतझड़ी पौधों जैसे-आड़ू, अलूचा, अंगूर, नाशपाती, आंवला, बेर आदि लगाने के लिए सर्दियों का मौसम (दिसंबर-फरवरी) अच्छा रहता है। सिंचाई जल की उपलब्धता होने पर रोपण का कार्य फरवरी-मार्च में भी किया जा सकता है। पौधे लगाते समय ध्यान रखें कि यह गड्ढों में उतनी गहराई तक ही लगे जितनी गहराई तक वह नर्सरी या पॉलीथीन की थैली में था। रोपण करते समय यह भी ध्यान रखें कि पौधा गड्ढे के मध्य में लगे, साथ ही मिट्टी की पिंडी न बिखरे अन्यथा जड़ों के क्षतिग्रस्त होने की भी आशंका होती है। प्लांटिंग बोर्ड का उपयोग भी पौधों को गड्ढे के बीचों-बीच लगाने के लिए किया जा सकता है। पौधा लगाने के बाद उसके आसपास की मिट्टी अच्छी तरह दबा देनी चाहिए। जहां तक संभव हो रोपण का कार्य सायंकाल के समय ही करें, जिससे उनको स्थापित होने के लिए पर्याप्त समय मिल सके। रोपण के बाद यदि बारिश नहीं हो रही हो तो सिंचाई अवश्य करें। गर्मियों में 7-10 दिनों के अंतराल पर व सर्दियों में 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें।

बागवानी में संतुलित मात्रा में उर्वरकों के उपयोग से बम्पर पैदावार

बगीचे में लें अंतरवर्ती फसलें

जब तक फल वृक्षों से उत्पादन प्रारंभ नहीं होता है तब तक बगीचे से किसी तरह की आमदनी नहीं मिलती है, बल्कि देखरेख पर खर्च ही करना पड़ता है। बड़े एवं मध्यम आकार के फल वृक्षों के रोपण के प्रारंभिक वर्षों में 60-80 प्रतिशत तक जगह खाली पड़ी रहती है। इस अवस्था में आर्थिक लाभ के लिए अनेक प्रकार की अल्प अवधि फसलें उगा सकते हैं। फसलों का चुनाव मृदा की उर्वरता, स्थानीय बाजार में मांग, संसाधनों की उपलब्धता, बाजार से दूरी, फल वृक्षों की आयु, मुख्य फसल का स्वभाव आदि को ध्यान में रखते हुये करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

बाग लगाने से पूर्व मृदा जांच आवश्यक रूप से करवा लेनी चाहिए। उसी की सिफारिश के आधार पर खाद व उर्वरकों का इस्तेमाल करना चाहिए। फल वृक्षों में खाद एवं उर्वरकों की मात्रा, मृदा की उर्वरता, पौधों की उम्र तथा फसल को दी गयी कार्बनिक खाद की मात्रा पर निर्भर करती है। खाद व उर्वरक हमेशा तने से दूर ही डालें और पौधे के फैलाव तक डालें। सामान्यत: एक वर्ष के पौधे में 5 कि.ग्रा. अच्छी सड़ी गोबर की खाद के अलावा 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस व 50 ग्राम पोटाश डालें। यह मात्रा पौधे की उम्र की दर से बढ़ती जाती है।

वायुरोधी वृक्षों का रोपण

वायुरोधक वृक्ष गर्मी में लू तथा सर्दी में पाले से बचाव तो करते हैं। इसके साथ ही ये बाग का सूक्ष्म वातावरण भी परिवर्तित कर देते हैं। देसी आम, जामुन, बेल, शहतूत, खिरनी, देसी आंवला, शीशम, कैंथ, कटहल, इमली आदि इस उद्देश्य के लिए उगा सकते हैं। वायुरोधी वृक्ष अपनी लंबाई के 4-6 गुना दूरी तक बाग की रक्षा करते हैं। बाग में इन वृक्षों की एक या दो कतार लगाई जाती है। इन वृक्षों को बाग में उत्तर व पश्चिम दिशा में लगाया जाता है। यदि खेत में जगह पर्याप्त हो तो ये खेत के चारों ओर भी लगा सकते हैं।

नाशपाती की भरपूर पैदावार

अमरूद में कीट एवं रोग प्रबंधन

डी.के. सूर्यवंशी*, **एम.के. कुरील**** और **डी.एस. मंडलोई*****

अमरूद के वृक्ष में छाल खाने वाला कीट, फलछेदक, फल मक्खी, शाखाबेधक आदि कीटों का प्रकोप प्रमुखता से होता है। रोगों की बात करें तो उकठा एवं एंथ्रेक्नोज (टहनियों का सूखना) रोग प्रमुखता से लगते हैं। इन कीटों एवं रोगों से अमरूर की फसल को बचाना अत्यंत आवश्यक है। इस लेख में अमरूद के प्रमुख कीटों, रोगों एवं उनके नियंत्रण के उपायों के बारे में बताया जा रहा है। इनका उपयोग कर किसान अधिक उत्पादन कर ज्यादा लाभ कमा सकते हैं।

हमारे देश में अमरूद की खेती प्रमुखता से की जाती है। इस फसल की उत्पत्ति अमेरिका के उष्ण कटिबंधीय भागों तथा वेस्टइंडीज में हुई थी, परन्तु यह भारत की जलवायु में इतना घुलमिल गया है कि इसकी खेती यहां सफलतापूर्ण की जा रही है। अमरूद को गरीबों का फल भी कहा जाता है। यह स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभदायक है। इसमें विटामिन 'सी' अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसके अलावा विटामिन 'ए' तथा 'बी' भी अमरूद में प्रचुर मात्रा में होता है। इन गुणों के कारण इसका अत्यधिक महत्व है। अमरूद में कीटों एवं रोगों से अधिक नुकसान होता है। विशेषकर वर्षा ऋतु में पौधों की वृद्धि तथा फलों की गुणवत्ता दोनों पर कीटों एवं रोगों का बुरा प्रभाव पड़ता है।

*वैज्ञानिक (पौध संरक्षण); **सहायक प्राध्यापक (उद्यानिकी); ***कार्यक्रम सहायक (उद्यानिकी), कृषि महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

छाल खाने वाली इल्ली

इस कीट की इल्ली हानिकारक होती है। यह अमरूद के उन बगीचों में अधिक पाई जाती है, जिनकी देखभाल ठीक से नहीं की जाती है। यह कीट संपूर्ण भारत में देखने को मिलता है। यह बहुत से फलों जैसे-बेर, अनार,नीबू, आम, आडू, आंवला, जामुन और फूलों तथा वन वृक्षों को भी नुकसान पहुंचाता है।

इसकी इल्ली मुख्य तनों और शाखाओं की छाल खाती है और उनमें छेदकर देती है। इससे वृक्षों में पोषक तत्वों एवं पौधों द्वारा बनाये भोजन का संचरण बंद हो जाता है। यह दिन के समय तने में रहती है और रात के समय बाहर आकर छाल खाती है। इस कीट का अधिक प्रकोप होने पर वृक्षों का विकास रुक जाता है। इस कारण फल और फूल प्रभावित होते हैं।

इसकी पहचान इल्लियों द्वारा टहनियों व तनों पर बनाई गई टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगों से होती है। यह रेशमी जालों, जिनमें चबाई हुई छाल के टुकड़े और इनकी विष्ठा शामिल होते हैं, से ढकी रहती है। इससे नई टहनियां सूख जाती हैं और वृक्ष रोगग्रस्त सा दिखाई देता है। वृक्ष की फल देने की क्षमता खत्म हो जाती है।

नियंत्रण

- इस कीट का हमला रोकने के लिए बागों को साफ-सुथरा रखें व तय संख्या से अधिक वृक्ष न लगायें।

- समय-समय पर बाग में जाकर सूखी टहनियों व वृक्षों की जांच करें, ताकि जल्दी ही इसके प्रकोप का पता लग सके।
- प्रकोप की शुरूआत में ही तनों पर लटकते काले-भूरे रंग के जालों को अलग कर दें और छेदों में तार डालकर इल्लियों को मार दें।
- तने में बने छेदों को मिट्टी के तेल या पेट्रोल में डुबोई हुई रूई से बंद कर दें।
- डाईक्लोरोवास 76 ई.सी. की 2 मि.ली. या मिथाइल पेराथियान की 5 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर कीट द्वारा किये गए छेदों में डालकर मिट्टी से बंद कर दें।
- जिस बाग में इस कीट का प्रकोप अधिक हो वहां पर मेलाथियान या डाईक्लोरोवास की 2 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 2-3 छिड़काव एक सप्ताह के अंतर से करें।

छाल खाने वाला कीट (इंडरबेला)

स्केल कीट

यह कीट छोटा, गोल, हल्का भूरा या पीला भूरा होता है, जो सफेद मोम जैसे चूर्णी पदार्थ से ढका रहता है। स्केल कीट टहनियों और पत्तियों की निचली सतह से चिपककर रस चूसता है और अपने शरीर से मीठा द्रव छोड़ता है। इसकी वजह से काली चींटियां आती हैं व फफूंदी भी लग जाती है। अधिक रस चूसने के करण पत्तियां पीली होकर मुरझा जाती हैं और अंत में सूखकर झड़ जाती हैं व नई शाखायें सूख जाती हैं। यह कीट अक्टूबर से नवंबर तक सक्रिय रहता है।

नियंत्रण

- इस कीट के आक्रमण से ग्रसित पत्तियों की टहनियों को काटकर कीटों सहित समाप्त कर दें। इससे स्केल कीट की शुरूआती संख्या में कमी आती है और यह आगे नहीं फैलता।
- इसकी रोकथाम के लिए वृक्ष की शाखाओं की कटाई-छंटाई करते रहना चाहिए, ताकि शाखायें एक-दूसरे पर न हों।
- इसको नियंत्रित करने के लिए रासायनिक कीटनाशी इमिडाक्लोप्रिड 17.8 मि.ली. का प्रति 3 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

फल मक्खी

यह अमरूद की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाली प्रमुख कीट है। विशेषकर वर्षा ऋतु में फल मक्खी अधिक नुकसान पहुंचाती है। यह एक बहुभक्षी कीट है। इसका प्रकोप अन्य फल फसलों जैसे-लीची, आड़ू, नाशपाती, आम व नीबू पर भी होता है। मादा फल मक्खी पकते हुए फलों में छिलके के नीचे अंडे देती हैं। इसकी वयस्क घरेलू मक्खी के बराबर होती है। इसकी सूंडियां उबले हुए चावल के दानों के बराबर होती हैं। जिन फलों में अंडे दिए जाते हैं उन पर गहरे हरे रंग के निशान हो जाते हैं। देखने पर फल के अंदर छोटे-छोटे मेगेट दिखाई पड़ते हैं। ग्रसित स्थान पर फल मुलायम पड़ जाता है एवं प्रभावित फल पकने से पहले ही गिर जाता है। इससे इसकी बाजार में कीमत न के बराबर हो जाती है। इल्लियां अपना जीवनचक्र पूर्ण करने के लिए फल से निकलकर जमीन में शंखी अवस्था में चली जाती हैं।

प्रबंधन उपाय

- मक्खियों द्वारा ग्रसित फलों को प्रतिदिन इकट्ठा करके जमीन में 60 सें.मी. गहराई में दबा देना चाहिए।
- जिन बागों में फल मक्खी का आक्रमण अधिक होता है उन बागों में वर्षा ऋतु की फसल नहीं लेनी चाहिए।
- फलों को वृक्ष पर पकने नहीं देना चाहिए।
- फल तोड़ने के बाद हल्की गुड़ाई करनी चाहिए, ताकि शंखी और मेगेट ऊपर आ जाएं और प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा नष्ट हो जाएं।
- अधिक आक्रमण की स्थिति में क्यूनालफॉस 25 ई.सी. का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। ध्यान रहे छिड़काव के एक सप्ताह बाद ही फलों की तुड़ाई करनी चाहिए।
- बाजार में उपलब्ध फ्रूट फ्लाई ट्रैप का उपयोग करना चाहिए।

रोग प्रबंधन

उकठा रोग

यह एक फफूंदजनित रोग है। इसमें पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। कुछ समय बाद पत्ते गिरने लगते हैं तथा अंत में सभी पत्तियां गिर जाती हैं। इससे पौधे की टहनियां सूख जाती हैं। इसके अतिरिक्त पौधे का तना नीचे से ऊपर की ओर फटना शुरू हो जाता है।

नियंत्रण

- सभी रोगी पौधों को जड़ से निकाल कर जला देना चाहिए।
- हमेशा लखनऊ-49 का मूलवृन्त प्रयोग करें।
- भूमि में पानी की सही निकासी होनी चाहिए तथा पानी अधिक समय तक भरा नहीं रहना चाहिए।
- पानी की आवश्यकता नहीं होने पर जल भराव नहीं होना चाहिए।
- वर्षा या सिंचाई का पानी तने के पास जमा रहने दें।

फलबेधक कीट

इसका आक्रमण अमरूद की बरसाती और सर्दी वाली दोनों मौसम की फसलों पर होता है। फलबेधक कीट की इल्लियां फलों में प्रवेश कर गूदे व बीज को खाकर उन्हें अंदर से खोखला कर देती हैं। फलों में बने हुए छेदों से लार्वा का मल निकला हुआ दिखाई देता है। इससे फल बाद में कमजोर हो कर सड़ जाते हैं एवं आखिर में गिर जाते हैं।

नियंत्रण

- ग्रसित फलों को नियमित रूप से इकट्ठा कर गड्ढे में गाड़ दें।
- फलों के मौसम के शुरू में और फलों के पकते समय क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर या मिथोमिल 40 एस.पी. 1 कि.ग्रा. का प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
- फल मक्खी कीट का प्रकोप अधिक होने पर 15 दिनों के अंतर से कीटनाशकों का बदल-बदल कर छिड़काव करें।
- आखिरी छिड़काव के 15 दिनों बाद ही फलों की तुड़ाई करें।

पुष्ट एवं सुडौल फलों की ज्यादा कीमत

- गड्ढे की मिट्टी को 2 प्रतिशत फार्मलिन के साथ छिड़काव करके मिट्टी को गीली बोरियों से ढक दें। इसके बाद 14 दिनों तक इसे खुला छोड़ दें और फिर स्वस्थ अमरूद के पौधे रोपें।
- नये पौधों को लगाते समय ध्यान रहे कि पौधे स्वस्थ हों एवं उनकी जड़ें क्षतिगस्त न हों।
- रोगग्रस्त पौधों का पानी स्वस्थ पौधों में न जाने दें।

इसका आक्रमण होने पर अभी तक इसका सुनिश्चित उपचार उपलब्ध नहीं है अतः बचाव ही उपचार है।

फलों का गलना (एंथ्रेक्नोज)

यह भी एक फफूंदजनित रोग है। इसका आक्रमण पके हुए फलों पर अधिक होता है। इस रोग में फलों पर फफूंद के गोलाकार हल्के दबे हुए भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। इससे फल 2 या 3 दिनों में पूरी तरह गल जाते हैं। यह फफूंद वर्षा के मौसम में पौधों पर आक्रमण करती है। इससे टहनियों का पीछे की तरफ का भाग सूखना शुरू हो जाता है।

नियंत्रण

- पौधों के थालों में वर्षा या सिंचाई जल का भराव नहीं होने दें।
- गले और सड़े हुए फलों को जमीन में गहरा दबा देना चाहिए।
- रोगी फलों को तोड़कर फेक दें और इसके बाद 3 ग्राम ब्लाइटॉक्स या कैप्टॉन का एक लीटर पानी घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

तनाबेधक कीट

यह नर्सरी का एक हानिकारक कीट है। तनाबेधक कीट नाजुक टहनियों में गैलरी बनाता है, जिसकी वजह से पौधे की बढ़वार रुक जाती है और टहनियों के नीचे शाखायें निकलने लगती हैं। इससे पौधा एक झाड़ी की तरह नजर आता है। पत्तियों व टहनियों पर काला भूरे रंग का चूर्ण नजर आता है। इसके आक्रमण से टहनियां सूख जाती हैं।

नियंत्रण

- इसकी रोकथाम के लिए कार्टपहाइडोक्लोराइड 75 डब्ल्यू.पी. या कार्बोसल्फान 25 ई.सी. की 2 मि.ली. मात्रा का प्रति का लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

आवश्यक है अमरूद का कीटों और रोगों से बचाव

कीवीफल उत्पादन की बढ़ती संभावनाएं

रविना पंवार*, **विशाल एस. राणा**** और **ए.के. सिंह*****

कीवी या कीवीफल एक प्रकार का पहाड़ी फल है और पर्णपाती बेल पर लगता है। इसको चाइनीज गूजबेरी भी कहते हैं। बाहर से चीकू जैसे-भूरे रंग वाला और अंदर से गहरे हरे रंग के गूदे वाला यह रोएंदार फल अपने आप में कई पोषक तत्वों का खजाना लिए हुए है। कीवीफल में मुख्यत: फाइबर, विटामिन 'सी', कैरोटिनायड, एंटीऑक्सीडेंट और कई प्रकार के खनिज पाए जाते हैं। ये सभी हमारे स्वास्थ्य के लिए काफी गुणकारी हैं। आज के समय में हिमाचल प्रदेश के किसान पारंपरिक सेब की बागवानी को छोड़कर कीवीफल की खेती की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस बदलाव का प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन है, जो कि इसकी खेती को एक नगदी फसल के रूप में स्थापित करने में लाभकारी साबित हो रहा है।

फल विशेषांक

पिछले कुछ वर्षों में कीवीफल के काफी बगीचे देश के अन्य पर्वतीय राज्यों जैसे-उत्तराखंड, जम्मू और कश्मीर, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय एवं नगालैंड में लगाये गये हैं। हमारे देश में इसका व्यावसायिक उत्पादन हिमाचल से शुरू हुआ, लेकिन वर्तमान समय में अरुणाचल प्रदेश, भारत का कीवीफल उत्पादन करने वाला अग्रणी राज्य बन गया है। यह राज्य देश के कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत भाग पैदा कर रहा है (राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड 2017 के अनुसार)। भारत में 4000 हैक्टर क्षेत्रफल में 12000 मिलियन टन कीवी का उत्पादन हो रहा है। इसमें हिमाचल 123 हैक्टर क्षेत्रफल पर 322 मिलियन टन उत्पादन कर रहा है (बागवानी विभाग, हिमाचल प्रदेश, 2017)।

कीवीफल का उद्गम स्थान चीन है। इसका आर्थिक दृष्टि से उपयोग न्यूजीलैंड द्वारा किया जाता रहा है। इसके निर्यात को बढ़ाने के लिए न्यूजीलैंड ने इस फल का नाम अपने राष्ट्रीय पक्षी के नाम पर रखा है। भारत में सर्वप्रथम कीवीफल को 1960 में लाल बाग उद्यान, बेंगलुरू में लगाया गया, परन्तु पौधे की सुषुप्तावस्था के कारण, यह फलन की स्थिति में आने में नाकामयाब रहा। पौधे की शीतकाल की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1963 में इसे भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के उपकेन्द्र फागली एवं शिमला में लगाया गया।

* एवं **डा. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी-173230, सोलन (हिमाचल प्रदेश); ***गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर-263145, उधमसिंह नगर (उत्तराखंड)

फल गुणवत्ता एवं पौष्टिक तत्व

कीवीफल, प्रोटीन और विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत माना जाता है। इसका फल खाद्य रेशा, फॉस्फोरस, कैल्शियम एवं पोटेशियम से भरपूर होता है (सारणी-1)।

बागवानी

कीवीफल की बागवानी के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए, जहां उपोष्ण एवं उपशीतोष्ण जलवायु पाई जाती हो। समुद्रतल से ऊंचाई 900-1800 मीटर के मध्य हो एवं जहां फलन हेतु 600-800 घंटे शीतलन (चिलिंग) की आवश्यकता पूर्ण होती हो। इसकी खेती के लिए बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। अधिक चिकनी मिट्टी या जिसमें जल जमाव हो, कीवीफल के उत्पादन के लिए ठीक नहीं रहती है।

किस्में

कीवीफल एक लिगांश्रयी पौधा है। पौधे को फलन की स्थिति में लाने के लिए नर एवं मादा किस्मों के पौधे लगाने की आवश्यकता होती है। परन्तु इन किस्मों की केवल फूलों से ही पहचान की जा सकती है। शाखाओं एवं टहनियों से इनकी पहचान कठिन है।

मादा किस्में	नर किस्में
हेवर्ड	एलिसन
एलिसन	तमूरी
एबॉट	
मोंटी	
ब्रूनो	

पौध प्रसारण

कीवीफल के पौधे कलम विधि (तना कर्तन), ग्राफ्टिंग एवं कलिकायन विधियों से तैयार किये जा सकते हैं। इनमें से कलम विधि सबसे सरल व उपयुक्त होती है।

एक आदर्श कलम 0.5-1.0 सें.मी. मोटी, 10-15 सें.मी. लंबी तथा 3-5 गांठों वाली होनी चाहिए। कठोर कलमें जनवरी तथा कोमल कलमें जून-जुलाई में तैयार की जाती हैं। इसको लगाने से पूर्व इन्हें 4000 पीपीएम इंडोल ब्यूटाआयरिक अम्ल (आईबीए) के घोल में डुबोया जाता है, ताकि पूर्ण रूप से इनकी वृद्धि हो सके।

कीवीफल की बेल

परागण एवं विरलन

कीवीफल एक लिंगाश्रयी पौधा होने के कारण इसमें परागण की क्रिया का अपना महत्व है। पौधे को फलन की स्थिति में लाने के लिए परागण आवश्यक है। एक नर पौधा 6-10 मादा पौधों के लिए उचित माना जाता है। सफल परागण के लिए नर एवं मादा पुष्पों का एक साथ खिलना अनिवार्य है। एलिसन की मादा किस्में, एबॉट, ब्रूनो एवं मोंटी में परागण के लिए एलिसन की नर किस्म उपयुक्त पाई गई है। हेवर्ड किस्म में परागण के लिए तमूरी किस्म को उपयुक्त पाया गया है। हेवर्ड की शीत अवस्था लंबी होने के कारण इसमें पुष्प देरी से आते हैं। कीवीफल के फूलों में मधुमक्खियों के कम विचरण की क्षमता के कारण हाथ से ही परागकणों को नर पुष्पों से मादा पुष्पों तक पहुंचाया जाता है। नर पुष्प खिलने के 2-3 दिनों बाद तक सक्रिय अवस्था में रहते हैं, जबकि मादा पुष्पों में परागकणों को ग्रहण करने की क्षमता 7-9 दिनों बाद तक रहती है।

पौधा रोपण

पौध रोपण से पूर्व दिसंबर में एक-एक घन मीटर के गड्ढे तैयार किये जाते हैं। इनको भरते समय 40 कि.ग्रा. गोबर की खाद तथा 1 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट मृदा में मिलाना चाहिए। दीमक के प्रकोप से बचाने के लिए डरमट या क्लोरपायरीफॉस 1 मि.ली./लीटर का घोल बनाकर प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा गोबर की पूर्ण रूप से सड़ी-गली खाद प्रयोग की जानी चाहिए अन्यथा दीमक लगने का भय रहता है।

पौध रोपण मुख्य रूप से जनवरी-फरवरी

कीवीफल कलिकायन

फल वृद्धि एवं विकास

कीवीफल औसतन 250-280 दिनों की फसल है। आमतौर पर इसमें अप्रैल के अंतिम सप्ताह से मई के प्रथम सप्ताह तक फूलों की आवक शुरू होती है। मई के प्रथम सप्ताह के अंत तक पौधों में फलन की शुरूआत हो जाती है। सीपीपीयू का 5 पीपीएम घोल फलों के आकार को बढ़ाने में सहायक साबित होता है। इस घोल का उपयोग फलों को मटर के दाने के आकार का हो जाने पर करते हैं।

वानस्पतिक गुण

कीवीफल एक पर्णपाती बेल है, जिसका वैज्ञानिक नाम *एक्टिनीडिया डेलिशियोसा* है। यह एक्टिनीडेसी कुल के एक्टिनीडिया वंश से संबंध रखती है। यह एक अष्टगुणित फल है। अंगूर की बेलों जैसी प्रतीत होने वाली इस फल की बेल अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि करने वाली होती है। प्रत्येक वर्ष ये बेलें 6 से 12 फीट तक वृद्धि कर लेती हैं। यदा-कदा यह वृद्धि 20 फीट तक भी आंकी जा सकती है। शुरूआती फलन के वर्षों में सघन बागवानी से इसका उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। समय के साथ टहनियों की अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण ग्रीष्मकालीन काट-छांट की आवश्यकता होती है।

पूर्ण रूप से विकसित कीवीफल की बेल

में किया जाता है। अत्यंत ठंडे क्षेत्रों में रोपण बसंत ऋतु में भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त पौधों की सिधाई (ट्रेनिंग) एवं किस्मों के चुनाव का भी अपना महत्व है। टी-बार विधि से पौध लगाते समय पौधे से पौधे का अंतर 6 मीटर एवं पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी 4 मीटर रखी जाती है। यह पौधे की अनुकूल बढ़ोतरी के लिए आवश्यक है।

सिधाई

कीवीफल की सफल बागवानी में सिधाई एवं कांट-छांट का विशेष महत्व है। पौधे के अच्छी तरह से गठित एवं स्थायी ढांचे के लिए शुरूआती वर्षों में उचित सिधाई की आवश्यकता होती है। इसकी बेल एक स्वयं सहायक बेल की श्रेणी में नहीं आती हैं। बेलों को अपने समुचित विकास के लिए एक स्थायी और मजबूत ढांचे की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक तौर पर 'टी' बार एवं परगोला विधियां कीवीफल उत्पादन की दृष्टि से उचित पाई गई हैं। परन्तु 'टी' बार विधि अपेक्षाकृत कम खर्चीली है। यह श्रम के अतिरिक्त खर्चे से तो बचाती ही है, साथ ही परागण की दृष्टि से भी उपयुक्त है।

कीवीफल में पत्तों की आवक

कांट-छांट

उचित कांट-छांट निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है:

- स्थायी ढांचे की स्थापना करने के लिए।
- वानस्पतिक एवं फलन की अवस्था में संतुलन बनाए रखने के लिए।
- ऐसे ढांचे की स्थापना करने के लिए जिससे पौधे की प्रकाश उपलब्धता एवं अवशोषण में किसी प्रकार की कोई बाधा न हो एवं प्रकाश संश्लेषण की क्रिया नियमित व उचित रूप से हो सके।
- नियमित उत्पादकता एवं फल वृद्धि बनाए रखने के लिए।

कीवी में मुख्यत: दो तरह की कांट-छांट की जाती है। एक शीतकालीन अथवा सुसुप्तावस्था में तथा दूसरी ग्रीष्मकालीन अवस्था में।

शीतकालीन कांट-छांट

इसका सबसे उत्तम समय दिसंबर-जनवरी है। कीवी में मुख्यत: फल नई शाखाओं पर लगते हैं, जो एक वर्ष पुरानी शाखाओं से निकलती हैं। इन शाखाओं पर 6-40 कलिकाएं उपस्थित होती हैं, परन्तु ये फलन में नहीं आ पातीं और केवल वानस्पतिक शाखा में रूपांतरित होती हैं। फलन के लिए शाखाएं केवल 6 से 10 कलिकाओं द्वारा ही उत्पन्न होती हैं।

ग्रीष्मकालीन कांट-छांट

यह मुख्यत: मई-जून-जुलाई में की जाती है। ग्रीष्मकालीन कांट-छांट अपने आप में निम्न कई उद्देश्यों का सम्मिश्रण है:

इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

- अनियमित व अवांछित शाखाओं को हटाने के लिए।
- अत्यधिक वानस्पतिक शाखाओं को हटाने के लिए।
- फलों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए।
- फलन वाली शाखाओं की मजबूती को बढ़ाने के लिए।

नर पुष्प

टी बार विधि में लोहे का 'टी' आकार का 6 फीट लंबा खम्बा होता है, जिसकी बाहें 5-6 फीट लंबी होती हैं। प्रत्येक खम्बे से 5 सीधी तारें लगाई जाती हैं, जिनका आपसी अंतर 45 सें.मी. होता है। रोपण के समय पौधे में कांट-छांट की जाती है तथा इसे एक या दो कलिका तक सीमित कर दिया जाता है। एक वेगवती शाखा को मुख्य तने के लिए चुनकर उसकी सिधाई की जाती है तथा अन्य शाखाओं को निष्कासित कर दिया जाता है। जब तक मुख्य तना या शाखा खम्बे की ऊंचाई तक नहीं पहुंच जाती उस वक्त तक लेटरल शाखा या आर्म को निष्कासित किया जाता है। जैसे ही मुख्य तना खम्बे के ऊपरी छोर की ओर पहुंचता है, वहां से दो शाखाएं (लेटरल शाखा या आर्म) एक दूसरे की विपरीत दिशा की ओर निकाली जाती हैं। इन शाखाओं को तारों के समानान्तर कर दिया जाता है एवं तारों से बांध दिया जाता है।

खाद एवं उर्वरक

कीवीफल को सामान्य विकास एवं फलन के लिए पर्याप्त खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकता होती है। पांच वर्ष से अधिक आयु के पौधों में 40 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 850 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 800-900 ग्राम पोटेशियम प्रति पौधा प्रतिवर्ष दिया जाना चाहिए। नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में अर्थात आधा भाग जनवरी-फरवरी में तथा शेष आधा भाग फल बनने पर मई के प्रथम सप्ताह में दिया जाता है। फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा गोबर की खाद के साथ दिसंबर-जनवरी में दी जाती है।

सारणी 1. कीवीफल में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में)

घटक	मात्रा
प्रोटीन	0.5-1.5 ग्राम
लिपिड	0.3-0.9 ग्राम
पेक्टिन	0.3-1.1 ग्राम
खाद्य रेशा	1.1-2.9 ग्राम
पोटेशियम	230-380 मि.ग्रा.
नाइट्रोजन	140-190 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	20-40 मि.ग्रा.
कैल्शियम	25-60 मि.ग्रा.
मैग्नीशियम	14-27 मि.ग्रा.
सल्फर	25 मि.ग्रा.
सोडियम	3-10 मि.ग्रा.
विटामिन 'सी'	80-300 मि.ग्रा.

सिंचाई

कीवीफल अत्यन्त तीव्रता से बढ़ने वाली पर्णपाती बेल है इसलिए इसे पानी की अधिक आवश्यकता होती है। इसकी बागवानी के लिए सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था का प्रबंध होना आवश्यक है। गर्मियों यानी कि अप्रैल से जुलाई में पौधे एवं फल की वृद्धि तेजी से होने के कारण अधिक सिंचाई अनिवार्य है। बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली को अपनाने से आवश्यकतानुसार सिंचाई की जा सकती है। अधिक जल की आवश्यकता होते हुए भी जल की क्षति को इस सिंचाई पद्धति से रोका जा सकता है। सिंचाई फलों के आकार एवं वजन को बढ़ाने में प्रभावी है।

उचित आकार, वजन एवं अच्छी गुणवता वाले फलों की प्राप्ति के लिए फलों का विरलन आवश्यक है। इससे फलों में जल, पोषक तत्वों इत्यादि कारकों की प्रतिस्पर्धा को बढ़ने से रोका जा सकता है। इसके लिए फूलों या फलों का कम से कम 20 प्रतिशत विरलन करना चाहिए तथा 5-6 फल प्रति फल टहनी पर रखने चाहिए।

परिपक्वता, तुड़ाई एवं उपज

कीवी के पौधों से रोपण के 5 वर्ष बाद पैदावार होने लगती है, जिसे व्यावसायिक स्तर पर आने में 8-10 वर्षों का समय लग जाता है। इसका फल मध्य अक्टूबर से पकना शुरू होता है। अलग-अलग किस्मों के आधार पर यह समय अक्टूबर के अंत तक होता है। इस समय भारत की मंडियों में फल कम होते हैं और यही कारण है कि कीवीफल का बाजार में अधिक एवं अच्छा मूल्य मिल जाता है।

इसके फल के बाहरी आवरण एवं गूदे के रंग में कोई परिवर्तन न होने के कारण इसकी परिपक्वता का अनुमान लगा पाना कठिन होता है। फलों की शर्करा (टीएसएस) के आधार पर इसकी तुड़ाई का समय सुनिश्चित किया जाता है। ओईसीडी के अनुसार, तुड़ाई के समय फलों की न्यूनतम शर्करा (टीएसएस) 6.2 प्रतिशत होनी चाहिए।

मादा पुष्प

औषधीय उपयोग

डेंगू बुखार में रक्त प्लेटलेट्स की संख्या में कमी आने लगती है। यह स्थिति जानलेवा भी हो सकती है, इसलिए डेंगू संक्रमित व्यक्ति को कीवीफल खाने की सलाह दी जाती है। यह रक्त प्लेटलेट्स की संख्या में बढ़ोतरी करने में सहायक है। इसके अलावा कीवीफल हृदय रोगियों के लिए भी लाभदायक पाया गया है, क्योंकि यह रक्त को पतला करने में सहायक है। एक अध्ययन के अनुसार रोजाना 2-3 कीवीफल 28 दिनों तक लगातार खाने से इसे खून पतला करने वाली दवाओं के विकल्प के रूप में देखा गया है। विटामिन 'ई' और एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा ज्यादा होने के कारण यह रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। इसमें पाया जाने वाला फॉलिक अम्ल (एसिड) गर्भवती महिलाओं के लिए भी लाभकारी है।

प्रति बेल/वर्ष लगभग 50-60 कि.ग्रा. फल, रोपण के सातवें वर्ष बाद प्राप्त किये जा सकते हैं।

विपणन की दृष्टि से भारत में कीवीफल के 3 ग्रेड प्रचलित हैं, जिनके मापदंड का मुख्य आधार फलों का वजन है। वजन के अनुसार, इनका श्रेणीकरण ग्रेड 'ए' (70 ग्राम से अधिक) ग्रेड 'बी' (50-70 ग्राम) एवं ग्रेड 'सी' (50 ग्राम से कम) में किया जाता है।

रोग, कीट एवं विकार

यह अच्छी बात है कि भारत में कीवीफल पर किसी प्रकार के रोग, कीट एवं विकार का गंभीर प्रकोप नहीं देखा गया है।

फल विशेषांक

आम की फसल में कीट प्रबंधन

मनोज कुमार*, आर.एन. यादव* और **शिवांशु तिवारी***

जहरीले या विषाक्त कीटनाशकों के निरन्तर अंधाधुंध प्रयोग के फलस्वरूप हमें कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इससे पर्यावरण प्रदूषण, मनुष्य एवं जीव-जंतुओं पर दुष्प्रभाव एवं कीटों की विभिन्न समस्याओं जैसे-नाशीकीटों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इससे कीटों में कीटनाशकों के प्रति अवरोधक क्षमता का विकास व परजीवी, परभक्षी जैसे उपयोगी कीटों का भी नाश हो रहा है। इन दुष्परिणामों को देखते हुए अब यह आवश्यक हो गया है कि कम से कम रासायनिक दवाओं का प्रयोग किया जाये एवं कीटों की रोकथाम के लिए दूसरे उपायों जैसे-कृषिगत क्रियायें, यांत्रिक उपायों एवं जैविक कारकों के प्रयोग आदि को यथासंभव अपनाया जाये। इस प्रकार किसानों को कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त हो सकेगा।

आम की फसल में 10 कीट प्रमुख रूप से नुकसान पहुंचाते हैं: 1-आम का भुनगा, 2-गुजिया, 3-पुष्प गुच्छ मिज, 4-डासी मक्खी, 5-जाला बनाने वाला कीट, 6-शाखाबेधक, 7-छाल खाने वाली सूंडी, 8-तनाबेधक, 9-शूट गाल सिला और 10-शल्क कीट। इन कीटों के लक्षण एवं प्रबंधन की विधियां निम्नलिखित हैं:

*सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक, विश्वविद्यालय, मेरठ-250110

आम का भुनगा

यह आम को सबसे अधिक हानि पहुंचाने वाला कीट है। इसको फुदका तथा लस्सी के नाम से भी जाना जाता है। इसकी तीन प्रजातियां-इडियोस्कोपस क्लसईपीएलिस, इडियोस्कोपस निटीड्यूलस, अमरीटोडस एटकिनसोनाई प्रमुख हैं। इनके शिशु व वयस्क दोनों ही मुलायम प्ररोहों, पत्तियों तथा फूलों का रस चूसते हैं। भुनगा एक प्रकार का मीठा रस विसर्जित करता है, जो पेड़ों, पत्तियों एवं प्ररोहों आदि पर लग जाता है। इस द्रव्य पर काली फफूंदी (सूटी मोल्ड) उगती है, जो पत्तियों पर काली परत जमाकर प्रकाश संश्लेषण पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। मादा भुनगा नयी पत्तियों, मुलायम प्ररोहों तथा पुष्प मंजरियों में अंडे (100-200) देती हैं। इनसे 4-7 दिनों में शिशु निकलते हैं और ये 4-5 बार केंचुली उतारने के बाद वयस्क अवस्था में पहुंच जाते हैं। गर्मियों में इसका जीवनचक्र 2-3 सप्ताह में पूरा हो जाता है। फरवरी-अप्रैल एवं जून-अगस्त में इसका अधिक प्रकोप रहता है।

आम का भुनगा

भुनगे से ग्रसित पत्ती

प्रबंधन

बागों में खरपतवार निकालकर उन्हें साफ-सुथरा रखना चाहिए। नये बागों में वृक्षों को उचित दूरी पर ही लगायें। जो बाग घने हैं उनकी कटाई-छंटाई अक्टूबर-नवंबर में करें। बौर निकलने के बाद बागों की बराबर देखभाल करें और जैसे ही भुनगे का प्रकोप शुरू हो एवं इनकी संख्या 5-10 प्रति बौर हो तो इनमें से किसी एक कीटनाशक कार्बेरिल (0.2 प्रतिशत), या मोनोक्रोटोफॉस (0.054 प्रतिशत) या क्वीनालफॉस (0.05 प्रतिशत), या क्लोरपाइरिफॉस (0.04 प्रतिशत) या डायमेथोएट (0.06 प्रतिशत) का छिड़काव पानी में घोल बनाकर फरवरी के पहले या दूसरे सप्ताह तक करें। यदि आवश्यक हो तो दूसरा छिड़काव फल लगने के बाद करें। नीम उत्पाद निम्बिसिडीन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव भी प्रभावी है। बागों में लगने वाले परभक्षी कीट मेलाडा बोनिनेन्सिस एवं क्राइसोपा लैक्सीपरडा एवं दूसरे परभक्षी कीट लेडीबर्ड बीटिल्स आदि हैं। जैविक कारक भी इसके नियंत्रण में उपयोगी हैं।

पुष्प गुच्छ मिज

इस कीट का प्रकोप उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में अधिक देखा गया है। पुष्प गुच्छ मिज का प्रकोप पहले गुच्छों पर, फिर छोटे-छोटे फलों पर और अंत में नये प्ररोहों के अग्र भाग पर होता है। इसके प्रभाव से बौर सूख जाते हैं।

प्रबंधन

अक्टूबर में बाग की सिंचाई कर नवंबर में गहरी जुताई करनी चाहिए। इससे कुछ कीट जुताई के दौरान नष्ट हो जाते हैं। इस कीट से प्रभावित बौर की डंठल अक्सर टेढ़ी हो जाती है और काले धब्बे से दिखाई देते हैं। प्रभावित भाग को जनवरी में काटकर जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। जिन बागों में पुष्प गुच्छ मिज का प्रभाव हो वहां बौर निकलने पर जनवरी में फेनिट्रोथियान (0.05 प्रतिशत), डायमेथोएट (0.045 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

गुजिया कीट

भुनगा के बाद आम में गुजिया का स्थान हैं। यह कीट भी मधुस्राव उत्पन्न करता है, जिसके ऊपर सूटी मोल्ड का वर्धन होता है। गुजिया कीट दिसंबर से मई तक पाया जाता है। इसकी मादा अप्रैल से मई में अंडे देने के लिए जमीन में नीचे उतरकर मिट्टी

गुजिया कीट

गुजिया परभक्षी कीट

तनाबेधक

संपूर्ण भारत में आम के वृक्ष को क्षति पहुंचाने वाला यह एक प्रमुख कीट है। यह तनाबेधक, आम के अतिरिक्त अन्य वृक्षों पर भी पाया जाता है। इस कीट की सूंडियां तने के नीचे से ऊपर की ओर छिद्र करती हैं, जिसके फलस्वरूप तना एवं मोटी शाखाएं सूख जाती हैं। इसके भृंग जुलाई व अगस्त में निकलते हैं।

प्रबंधन

इसके प्रबंधन के लिए छाल खाने वाली सूंडी के लिए संस्तुत तरीके प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

जाला बनाने वाला कीट

इस कीट की सूंडियां अपनी लार को रेशम के धागे की तरह उपयोग करके पत्तियों को एक स्थान पर जोड़कर घोंसला सा बनाती हैं। जालों में रहकर ये डंठल को छोड़कर पत्तियों का सारा भाग खा जाती हैं। जाले बनाने वाले कीट के प्रकोप से टहनियां सूख जाती हैं। कभी-कभी वृक्ष की सभी पत्तियां सूख जाती हैं। पुराने घने बागों में इसका प्रकोप अधिक रहता है। इस कीट का प्रकोप अप्रैल-दिसंबर तक रहता है।

जाला बनाने वाला कीट

प्रभावित पेड़

प्रबंधन

इस कीट की वृद्धि को रोकने के लिए प्रभावित पत्तियों को काटकर जला देना चाहिए। यदि जाला बनाने वाले कीट का प्रकोप अधिक हो तो क्यूनालफॉस (0.05 प्रतिशत) या कार्बेसिल (0.2 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत), किसी एक का जुलाई के अन्तिम सप्ताह में छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार दो बार छिड़काव 15-15 दिनों के अंतराल पर किया जा सकता है।

में घुस जाती है। वहां यह 300-400 अंडे देती है। दिसंबर के अंतिम सप्ताह में अंडों से शिशु निकलकर वृक्ष पर चढ़ने लगते हैं। ये बड़े होकर ऊपरी सतह को सफेद पाउडर से ढक लेते हैं।

प्रबंधन

गुजिया कीट की रोकथाम के लिए उचित होगा कि अंडों को जमीन में ही नष्ट कर दें। शिशु कीटों को वृक्ष पर चढ़ने से रोका जाये। अक्टूबर में बाग की सिंचाई कर नवंबर में गहरी जुताई करनी चाहिए। इससे कुछ कीट जुताई के दौरान नष्ट हो जाते हैं व कुछ परजीवी/परभक्षी द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं।

डासी मक्खी

अंडे से निकली गुजिया कीट को ऊपर चढ़ने से रोकने के लिए एल्काथीन/पॉलीथीन पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। शिशु कीटों को जमीन में नष्ट करने के लिए क्लोरपाइरिफॉस (1.5 प्रतिशत) 250 ग्राम प्रति वृक्ष की दर से तने के चारों ओर बेसिन में डालकर खुरपी से मृदा में मिला देते हैं। यदि गुजिया वृक्ष पर चढ़ गयी हो तो मोनोक्रोटोफॉस (0.04 प्रतिशत), या डायमेथोएट (0.06 प्रतिशत) का तुरन्त छिड़काव करना चाहिए। जैविक कारकों में परभक्षी कीट, रोडोलिया फुमिडा, मीनोकाइलस सेक्समैक्यूलेटस आदि हैं।

डासी मक्खी

यह कीट भी आम के फल को काफी हानि पहुंचाता है। इसकी सूंडियां आम के गूदे को खाकर उसे एक सड़े अर्द्ध-तरल बदबूदार पदार्थ के रूप में परिवर्तित कर देती हैं। वयस्क मक्खियां अप्रैल में जमीन से निकलती हैं और परिपक्व फलों में 150-200 अंडे देती हैं। दो से तीन दिनों बाद अंडे से सूंडियां निकलकर गूदे को खाना शुरू कर देती हैं। इनकी संख्या मई-जुलाई में अधिक होती है और अगस्त-सितंबर में इनकी संख्या घटने लगती है।

प्रबंधन

नवंबर-दिसंबर में की गई जुताई प्यूपा को नष्ट करने में अधिक सहायक होती है। मक्खियों की संख्या का आंकलन करने के लिए लिंग आकर्षक ट्रैप का प्रयोग करना चाहिए। 100 मि.ली. दवा (मिथाईल यूजिनाल 0.1 प्रतिशत एवं मैलाथियान 0.1 प्रतिशत) युक्त पानी के घोल को चौड़े मुंह की शीशियों में डालकर 10 बोतल ट्रैप/हैक्टर की दर से वृक्ष पर लटकाना चाहिए। इसके अतिरिक्त 0.2 प्रतिशत कार्बेसिल + 0.1 प्रतिशत प्रोटीन हाइड्रोलाइजेट अथवा शीरा के घोल का छिड़काव मक्खियों के अंडे देने से पहले मई के प्रथम सप्ताह तक किया जाना चाहिए। जून-जुलाई में मक्खी से ग्रसित फलों को नष्ट कर देना चाहिए। निर्यात किये जाने वाले आम को वेपर हीट ट्रीटमेन्ट द्वारा उपचारित किया जाना चाहिए।

शाखाबेधक

इसकी सूंडियां नए प्ररोहों को हानि पहुंचाती हैं। वयस्क कीट पत्तों पर अंडे देते हैं। अंडों से सूंडियां निकलकर शाखा में ऊपर से नीचे की ओर 10-15 सें.मी. तक छेद कर देती हैं। ग्रसित शाखाएं मुरझाकर अंत में सूख जाती हैं।

प्रबंधन

प्रभावित प्ररोहों को काटकर नष्ट

सावधानियां

- आम में बौर निकलने पर बागों में कीटों की संख्या का आंकलन कर उनके नियंत्रण के लिए उपाय करने चाहिए तथा आवश्यकता होने पर ही कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।
- कीटनाशी रसायनों का बदल-बदल कर प्रयोग करना चाहिए।
- जिस समय आम के वृक्ष पर बौर आया हो, उस समय छिड़काव नहीं करना चाहिए
- कीटनाशी रसायनों के स्थान पर अन्य विधाओं को प्राथमिकता देनी चाहिए
- परभक्षी कीट, परजीवी फफूंद, मकड़ियां आदि नाशी कीटों की संख्या में कमी लाने में सहायक हैं।
- सही समय पर, सही दवा का सही मात्रा में, सही विधि द्वारा प्रयोग करना चाहिए। सिंथेटिक पाइरीथ्राइड्स का छिड़काव नहीं करना चाहिए।

शल्क कीट

शल्क कीट

ये कीट पौधों की पत्तियों, टहनियों, प्ररोहों आदि भागों पर पाये जाते हैं और इन भागों का रस चूसते हैं। इसके प्रभाव से पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और बाद में सूखकर गिर जाती हैं तथा प्ररोह भी सूखकर गिर जाते हैं। शल्क कीट छोटे-छोटे कई प्रकार के रंगों के होते हैं। इनकी मादा सैकड़ों की संख्या में अंडे देती हैं, जिनसे शिशु निकलकर पत्तियों, टहनियों एवं प्ररोहों में चिपककर रस चूसते हैं। इस कीट का पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिक प्रकोप पाया गया है।

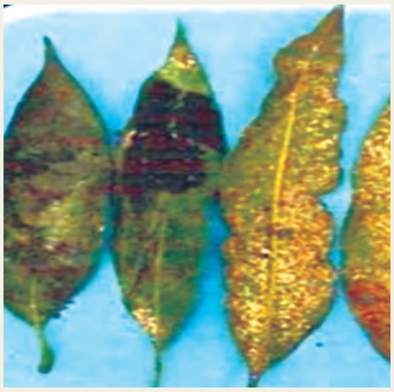

शल्क कीट से ग्रसित पत्तियां

प्रबंधन

संक्रमित पत्तियों, टहनियों एवं प्ररोहों को काटकर नष्ट कर देना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर डायमेथोएट (0.06 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए। दवा का छिड़काव पत्तियों के दोनों ओर करना चाहिए।

कर देना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर कार्बेरिल (0.2 प्रतिशत) या क्वीनालफॉस (0.05 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) में से किसी एक का छिड़काव करना चाहिए। नई पत्तियों व शाखाओं के

शाखाबेधक

निकलने के समय पहला छिड़काव करना चाहिए।

छाल खाने वाली सूंडी

यह सूंडी पुराने व छायादार बागों में अधिक आक्रमण करती है। आम के अतिरिक्त दूसरे फलदार पौधों, जंगली वृक्षों तथा फूलदार पौधों पर भी ये कीट पाये

छाल खाने वाली सूंडी

जाते हैं। मादा कीट लगभग 300-400 अंडे, समूह में, तने की छाल पर देती है। एक वर्ष में इसकी एक पीढ़ी तैयार हो जाती है। प्रभावित वृक्ष के तनों और टहनियों पर लंबे-लंबे जाले से दिखाई देते हैं। सूंडियों का प्रकोप अप्रैल-दिसंबर तक अधिक होता है। ये वृक्ष की छाल को खाती हैं और तने व टहनियों में सुरंग बना लेती हैं। इनके प्रकोप से वृक्ष कमजोर होकर सूख जाता है।

प्रबंधन

इस कीट से प्रभावित वृक्ष के तने से जाले साफ कर देने चाहिए। यदि प्रकोप अधिक हो तो मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) या डी.डी.वी.पी. (0.05 प्रतिशत) का घोल तने में किये गये छिद्र में डालकर छिद्र को मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।

शूट गाल सिला

इसके प्रकोप से आम के वृक्षों की प्ररोहों में नुकीली गांठें बन जाती हैं, जिससे उनमें बौर और फल नहीं लगते हैं।

शूट गाल सिला ग्रसित आम की प्ररोहें

शूट गाल सिला

शूट गाल सिला का प्रकोप उत्तर प्रदेश के तराई वाले भागों, उत्तरी बिहार एवं बंगाल में अधिक होता है। इसकी मादा कीट पत्तियों पर एक-एक करके लगभग 150 अंडे मार्च से अप्रैल तक देती है। इसके बाद ये अंडे सुषुप्तावस्था में रहते हैं और इनमें से अगस्त-सितंबर में शिशु निकलकर प्ररोहों का रस चूसते हैं। शूट गाल सिला के प्रभाव से नुकीली एवं तिकोनी गांठें बन जाती हैं।

प्रबंधन

अधिक प्रभावित प्ररोहों को नवंबर में तोड़कर नष्ट कर दें। मध्य अगस्त से क्यूनालफॉस (0.05 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

पोषक तत्वों का खजाना है करौंदा

प्रियंका कुमावत* और **संदीप कुमार****

करौंदे का वृक्ष सदाबहार, झाड़ीनुमा और कांटेदार होता है। इसका वानस्पतिक नाम *कैरिसा कैरेंडस* है, जो अपोक्यनेसी परिवार से संबंधित है। यह झाड़ीनुमा कांटेदार वृक्ष होने की वजह से मुनाफा देने के साथ-साथ जंगली पशुओं से फसल की सुरक्षा भी प्रदान करता है। करौंदा को किसी भी फसल या बागानों के चारों तरफ जीवंत बाड़ के रूप में लगाया जा सकता है। इसे जंगलों और खेत-खलिहानों के आसपास कंटीली झाड़ियों के रूप में प्रचुरता से उगता हुआ भी देखा जा सकता है। करौंदे के वृक्ष पहाड़ी क्षेत्रों में ज्यादा होते हैं। यह भारत में राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश और हिमालय के क्षेत्रों तथा नेपाल व अफगानिस्तान में भी पाया जाता है।

करौंदे के पौधे की ऊंचाई 6 से 7 फीट तक होती है। इसमें पत्तों के पास मजबूत कांटे होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। इसमें जूही के फूलों के समान गंध आती है। करौंदे के फल गोल, छोटे और हरे रंग के होते हैं। कच्चे फल को काटने पर इसमें से दूध निकलता है व स्वाद में खट्टे और कसैले लगते हैं। पकते समय इसके फल लालिमा लिए अंडाकार बैंगनी व लाल रंग के दिखायी देते हैं और पकने पर ये काले रंग के दिखायी देते हैं। देखने में ये फल बहुत ही सुन्दर होते हैं। इसमें 4 बीज पाये जाते हैं। पके फल विशिष्ट सुगंध के साथ स्वाद में मीठे व अम्लीय लगते हैं।

करौंदा पोषक तत्वों से भरपूर होता है, इसमें प्रोटीन (1.1-2.25 प्रतिशत), विटामिन 'सी' (1.6-17.9 मि.ग्रा./100 ग्राम) और खनिज विशेष रूप से लौह तत्व (39.1 मि.ग्रा/100 ग्राम), कैल्शियम (21 मि.ग्रा./100

गुणकारी करौंदा फल

*उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान); **उद्यानिकी और वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

ग्राम) और फॉस्फोरस (38 मि.ग्रा./100 ग्राम) पाया जाता है। परिपक्व फलों में पेक्टिन की उच्च मात्रा होती है। इसका उपयोग जेली, जैम, स्क्वैश, सॉस, सिरप जैसे विभिन्न उत्पाद बनाने में किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी बहुत मांग है। इसके अलावा अचार और चटनी में भी इसका इस्तेमाल किया जाता है। करौंदे के सूखे फल किशमिश का विकल्प बन सकते हैं। इसके फलों से कैंडी भी बनायी जाती है, जो स्वाद में बहुत अच्छी होने के साथ पोषक तत्वों से भरपूर होती है।

जलवायु व भूमि

पूरे भारत में करौंदा शुष्क, उष्णकटिबंधीय और उप उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले क्षेत्रों में आसानी से लगाया जा सकता है। यह बहुत ही सहिष्णु झाड़ी होती है। इसमें सूखा व क्षारीयता सहन करने की क्षमता होती है। इसको रेतीली, बंजर और पथरीली भूमि में भी लगाया जा सकता है। परती भूमि के लिए करौंदा बहुत ही उपयुक्त पौधा है। जिन क्षेत्रों में पाले का प्रकोप अधिक होता है वहां प्रारंभिक बढ़वार की अवस्था में इसके पौधों को नुकसान की आशंका बनी रहती है।

पादप प्रवर्धन एवं रोपाई

करौंदे का प्रवर्धन प्राय: बीज द्वारा किया जाता है। इसके पौधों में सुषुप्तावस्था नहीं पाई जाती है अत: पूर्ण पके हुए फलों से ताजा बीज अगस्त-सितंबर में निकाल कर क्यारियों एवं पॉलीथीन की थैलियों में बुआई कर देते हैं। ये पौधे एक वर्ष में खेत में लगाने लायक हो जाते हैं। करौंदा पौधों की रोपाई के लिए जुलाई-अगस्त या फरवरी-मार्च का समय उपयुक्त होता है। बीज से पौधे तैयार करने में बहुत समय लगता है। पौधे बरसात के मौसम में स्टेम कटिंग व गूटी द्वारा भी तैयार किए जा सकते हैं। इन पौधों को तैयार होने में तीन महीने का समय लगता है। फूल आना मार्च में शुरू होता है और जुलाई से सितंबर के बीच फल पक जाता है।

करौंदे की किस्में

इसकी मुख्यत: दो प्रजातियां लगाई जाती हैं। भारतीय प्रजाति जिसे वैज्ञानिक भाषा में कैरिसा कैरेंड्स कहते हैं। इसके फल छोटे, आकर्षक और गुलाबी रंग के होते हैं व इनमें विटामिन 'सी' की मात्रा अधिक होती है। इसकी उपज 6-7 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी होती है।

दूसरी अफ्रीकन प्रजाति है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में *कैरिसा ग्रेंडीफ्लोरा* कहते हैं। इसके फलों का आकार बड़ा व रंग गहरा लाल होता है। फल स्वाद में मीठे होते हैं व इनमें विटामिन 'सी' की मात्रा कम होती है। इसकी उपज 3-4 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी होती है।

पंत मनोहर

इस किस्म के पौधे की झाड़ी घनी एवं ऊंचाई मध्यम होती हैं। इसके फल सफेद रंग पर गहरी गुलाबी आभा लिए होते हैं।

पंत सुदर्शन

इस किस्म के पौधे की ऊंचाई मध्यम तथा फल सफेद रंग पर गुलाबी आभा लिए होते हैं।

पंत स्वर्ण

इस किस्म के पौधे की ऊंचाई अधिक होती है और ये झाड़ीनुमा होते हैं। फल हरे रंग के गहरी भूरी आभा लिए होते हैं।

कोंकण बोल्ड

यह किस्म कोंकण कृषि विद्यापीठ ने चयन विधि द्वारा तैयार की है। इसके फल हरे से गहरे बैंगनी रंग के होते हैं और फलों का आकार भी बड़ा होता है।

रंग के आधार पर किस्में हरी, गुलाबी, सफेद तथा लाल होती हैं। इसके अलावा मैरून कलर, सफेद गुलाबी एवं सी.एच.इ.एस.के.-2 आदि किस्में भी प्रचलित हैं।

तैयार पौधों को बाड़ के लिए लगाने के लिए 1.5 मीटर व केवल फलों के उद्देश्य से लगाए जाने वाले पौधों की दूरी 3 मीटर रखी जाती है। इसके लिए भूमि में 2×2×2 फीट का गहरा गड्ढा खोदकर उसको 10 से 15 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद से भर देना चाहिए तथा पौधों की रोपाई करनी चाहिए। पौधे लगाने के तुरंत बाद पर्याप्त मात्रा में सिंचाई करनी होती है।

खाद एवं उर्वरक

करौंदे को बहुत ज्यादा खाद एवं उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती है। अच्छी वृद्धि के

नर्सरी में तैयार करौंदे के पौधे

करौंदे की रोपाई

करौंदे का उपयोग

- इसके फलों के चूर्ण के सेवन से पेट दर्द में आराम मिलता है।
- यह भूख को बढ़ाता है, पित्त को शांत करता है और दस्त की समस्या का निदान करता है। खासकर दस्त के लिये तो करौंदे के फल का सेवन अत्यन्त ही लाभदायक है।
- इसकी पत्तियों के रस के सेवन से सूखी खांसी में आराम मिलता है।
- मसूढ़ों से खून निकलने की समस्या करौंदे के फल खाने से ठीक होती है। यह दांतों को भी मजबूत बनाता है।
- लौह तत्व की अधिकता होने के कारण इसके फलों के सेवन से रक्त अल्पता में भी फायदा मिलता है।
- गर्मियों में लू लगने और डायरिया होने पर इसके फलों का जूस पीने पर तुरंत आराम मिलता है।
- सर्प के काटने पर करौंदे की जड़ को पानी में उबालकर रोगी को पिलाने से लाभ मिलता है।
- इसकी जड़ के पेस्ट को तेल में पकाकर घाव व खुजली वाली जगह लगाने से घाव के कीट मर जाते हैं। यही यही खुजली में फायदा पहुंचता है।
- बुखार में करौंदे की जड़ का क्वाथ बनाकर लेने से लाभ मिलता है।
- खांसी में इसके पत्तों के अर्क को निकालकर उसमें शहद मिलाकर चाटना श्रेष्ठ है।
- करौंदा का प्रयोग मूंगा व चांदी की भस्म बनाने में भी किया जाता है।

फलों से लदे करौंदे के पौधे

लिए पौधे लगाते समय 20 से 25 ग्राम यूरिया प्रति पौधा गड्ढे में लगाने से पूर्व मिलायी जाती है। फल प्राप्त करने के उद्देश्य से लगाए गए पौधों में प्रत्येक वर्ष लगभग 10 से 15 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद व 100 ग्राम यूरिया व 300 ग्राम सुपर सिंगल सुपर फॉस्फेट देना होता है। खाद प्रतिवर्ष पौधों में फूल आते समय (मार्च महीना) देकर सिंचाई करनी चाहिए। यूरिया की मात्रा फल वाले पौधों में एक साथ न देकर टुकड़ों में देनी चाहिए।

सिंचाई

करौंदे में सिंचाई 10 से 15 दिनों के अंतराल पर गर्मी के महीने में करते हैं। इस समय पौधों पर फूल आते हैं। सर्दी के समय में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है किंतु पौधों को पाले से बचाने के लिए हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए, जिससे इनको पाले के बुरे प्रभाव से बचाया जा सके।

काट-छांट

करौंदे की बाड़ लगाने के लिए शुरू से ही नियमित काट-छांट करते रहना चाहिए, जिससे इनकी बढ़वार अच्छी हो और ये नीचे से ज्यादा फैलकर झाड़ीनुमा बन पायें। पौधे में कांट-छांट का उपयुक्त समय फलों की तुड़ाई के बाद का होता है। मुख्यत: यह अक्टूबर में की जाती है।

तुड़ाई एवं उपज

करौंदे के बीज द्वारा तैयार किए गए पौधों में फलन प्राय: 4 से 5 वर्षों के बाद व गुट्टी द्वारा तैयार पौधों में रोपाई के 2 से 3 वर्ष बाद आना शुरू होता है। ये 100-110 दिनों के बाद परिपक्व होते हैं। जुलाई से सितंबर के बीच फल

करौंदे के फलों की रंगीन आभा

पक जाते हैं। सब्जी एवं चटनी के लिए कम विकसित एवं कच्चे फलों की तुड़ाई की जाती है। जेली बनाने के लिए अधपके फलों की तुड़ाई करें। इस समय पेक्टिन की मात्रा अधिक होती है। पूर्ण पके फलों की तुड़ाई बीजों के लिए करते हैं। बाड़ के लिए लगाए गए पौधों से लगभग 2 से 3 कि.ग्रा. तथा फल के उद्देश्य से लगाए गए पौधों से 6 से 8 कि.ग्रा. प्रति पौधे की उपज मिलती है।

तुड़ाई उपरांत कार्य

फलों का भंडारण उनकी अवस्था पर निर्भर करता है। परिपक्वता पर तोड़े गए फलों को कमरे के तापमान पर कुछ दिनों के लिए संग्रहित किया जा सकता है। अपरिपक्व चरण में तोड़े गए फल जल्दी खराब होते हैं और केवल 2-3 दिनों तक ठीक रहते हैं। फलों को SO_2 (2,000 पीपीएम) के घोल में 6 महीने के लिए संग्रहित किया जा सकता है।

कच्चे या परिपक्व फल अचार बनाने के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं। इन्हें जेली और कैंडी बनाने में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। पके फलों को स्क्वैश, सिरप या बोतलबंद पेय के लिए उपयोग किया जा सकता है। इन्हें सुखाया भी जा सकता है।

करौंदा की फलत

करौंदे के उत्पाद

कम समय में पकने वाली अंगूर की नई संकर किस्में

संजय कुमार सिंह*, **महेंद्र कुमार वर्मा***, **विश्व बंधु पटेल***, **चवलेश कुमार*** और **अरविन्द***

अंगूर एक लजीज एवं स्वादिष्ट फल है। इसे ताजा, पेय पदार्थ एवं सोमरस के रूप में उपयोग किया जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से इसके औषधीय गुणों का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों जैसे-'सुश्रुता संहिता' और 'चरक संहिता' में किया गया है। पैदावार की दृष्टि से भी इसकी बागवानी से प्रति इकाई आमदनी काफी अधिक होती है। भारत में वर्ष 2016-17 में लगभग 29,22,000 मीट्रिक टन अंगूर का उत्पादन 1,37,000 हैक्टर क्षेत्रफल में किया गया था। देश में अंगूर की उत्पादकता विश्वभर में सबसे ज्यादा (21.15 टन/हैक्टर) है। किसानों को अंगूर की बागवानी से लगभग 5-10 लाख रुपये वार्षिक आय प्रति हैक्टर मिल रही है। हमारे देश में अंगूर की बागवानी, दक्षिण एवं पश्चिम के उष्ण कटिबंधीय प्रांतों जैसे-महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, तेलंगाना इत्यादि में बहुतायत से की जा रही है। उत्तर भारत के उपोष्ण कटिबंधीय मैदानी क्षेत्रों में भी अंगूर की खेती की जाती है तथा मई व जून में फल की तुड़ाई की जाती है। इस समय विश्वभर में केवल गिने-चुने देशो में अंगूर में परिपक्वता आती है अतः आर्थिक दृष्टि से अंगूर की खेती काफी फायदेमंद है एवं उत्तर भारत में अंगूर उत्पादन एक विशेष स्थान रखता है।

उपोष्ण तथा उष्णकटिबंधीय क्षेत्र दिल्ली, उत्तर प्रदेश (मेरठ, बागपत), हरियाणा (हिसार, जिंद) और पंजाब (भटिंडा, फिरोजपुर, गुरदासपुर और लुधियाना) में स्थित हैं। इस प्रकार की जलवायु वाले प्रदेशों में फरवरी-मार्च में कलियों का फुटाव शुरू होता है। शीत ऋतु में अंगूर की बेलें सुषुप्त अवस्था में रहती है। यहां फरवरी में तापमान बढ़ने के कारण बेलों की सुषुप्त अवस्था टूट जाती है एवं कलियों का फूटना प्रारंभ हो जाता है। सबसे पहले वानस्पतिक कलियों में फुटाव होता है तथा उसके 20 से 25 दिनों पश्चात पुष्प कलियों का फुटाव प्रारंभ हो जाता है। यह लगभग 10-15 दिनों के बाद 20-25 मार्च तक पूर्णतः खत्म हो जाता है। अप्रैल तथा मई में अंगूर के दानों की बढ़वार तथा परिपक्वता चलती रहती है। मार्च से जून (ग्रीष्म) के दूसरे सप्ताह तक में तापमान काफी ज्यादा रहता है एवं कभी-कभी 45 डिग्री सेल्सियस भी पार कर जाता है। इन महीनों में मौसम सूखा होने तथा वायुमंडल में आर्द्रता कम होने के कारण बेलों पर रोग तथा रोगों का आक्रमण नगण्य रहता है। फलस्वरूप किसान की पैदावार पर होने वाली लागत भी कम आती है एवं फलों पर कीटनाशक अवशेष की समस्या नहीं के बराबर रहती है। इस प्रकार फलों की गुणवत्ता स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम रहती है।

इस प्रकार की जलवायु वाले प्रदेशों में अंगूर के पकने के समय पूर्व-मानसून की बारिश प्रायः आ जाती है। इस कारणवश फलों

*फल एवं औद्यानिकी प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

में फटने की समस्या बनी रहती है। इस प्रकार की जलवायु में केवल शीघ्र पकने वाली गिनी-चुनी किस्मों जैसे-'परलेट' तथा 'ब्यूटी सीडलेस' को ही लगाया जाता है। परन्तु इन दोनों किस्मों में फलों से संबंधित कुछ समस्याएं गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के तौर पर 'परलेट' में दानों का छोटा-बड़ा रहना एवं 'ब्यूटी सीडलेस' में दानों में असमान रूप से रंग एवं मिठास आना मुख्य है। परिणामस्वरूप किसानों को नुकसान उठाना पड़ता है। इन समस्यओं के समाधान के लिए भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में कुछ नई संकर किस्मों को विकसित किया गया है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। ये किस्में जल्दी पककर तैयार हो जाती हैं एवं फल की गुणवत्ता भी अच्छी रहती है।

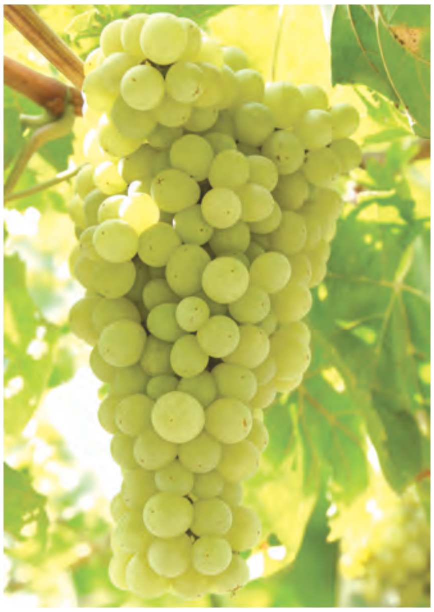

पूसा अदिति

पूसा स्वर्णिका

इस किस्म का विकास 'हूर × कार्डिनल' के संकरण द्वारा किया गया है। यह शीघ्र पकने और बीज वाली किस्म है। इसके दानों का रंग सुनहरा पीला होता है। इसके फल ताजा खाने एवं मुन्नका बनाने के लिए उपयुक्त होते हैं। इसके फल पूर्व-मानसूनी बारिश से पहले जून के प्रथम सप्ताह में पककर तैयार हो जाते हैं। इसके फूल खिलने से पकने तक 80-85 दिनों का समय लगता है। गुच्छों का आकार बड़ा (386 ग्राम), दानों का आकार बड़ा (3.5 से 5.0 ग्राम) तथा गोलाकार होता है। यह नहीं इसमे अधिक मिठास (20 से 22 डिग्री ब्रिक्स) रहती है। मंडप प्रणाली में औसतन उपज 13-15 टन/हैक्टर मिलती है। इस किस्म के दानों का आकार समान रूप से गोल रहता है एवं शॉट बेरीज विकार से मुक्त रहता है। बेल मध्यम ओजस्वी है और यह 5-6वीं कली पर गुच्छा देती है। यह संकर किस्म पाउडरी मिल्ड्यू तथा एंथ्रेक्नोज के लिए मामूली सहिष्णु है।

पूसा अदिति

इस किस्म का विकास 'बंकुई अबायद' एवं 'परलेट' के संकरण द्वारा किया गया है। इस प्रजाति का अनुमोदन दिल्ली राज्य के लिए वर्ष 2017 में किया गया था। यह शीघ्र पकने वाली, बीजरहित, दानों के हल्के हरे रंग वाली किस्म है। इसके ताजा फल खाने के लिए उपयुक्त होते हैं। इसके फल, पूर्व-मानसून की वर्षा से पहले पककर जून के प्रथम सप्ताह में तैयार हो जाते हैं। फूल खिलने से पकने के बीच 80-85 दिन लगते हैं। गुच्छों का आकार बड़ा (397 ग्राम), दानों का आकार बड़ा (3.05 ग्राम, 18. मि.मी.), गोलाकार-लंबाकार, ठोस गूदा, एवं मिठास अच्छी (19.3 डिग्री ब्रिक्स) रहती है। मंडप प्रणाली में औसतन उपज 13-15 टन/हैक्टर मिल जाती है। इस प्रजाति में दानों के समान रूप से होने के कारण यह शॉट बेरीज से मुक्त रहता है। दानों पर जिब्रेलिक अम्ल का सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। बेल मध्यम ओजस्वी होती है और 4-5वीं कली पर गुच्छा देती है। यह संकर किस्म एंथ्रेक्नोज और पाउडरी मिल्ड्यू के लिए मामूली सहिष्णु है।

पूसा त्रिसार

इस किस्म का विकास ('हूर × भारत अर्ली') एवं 'ब्यूटी सीडलेस' के संकरण द्वारा किया गया है। यह शीघ्र पकने वाली, बीजरहित, दानों के हल्के हरे रंग वाली किस्म है। इसके फल ताजा खाने एवं पेय बनाने के लिए उपयुक्त होते हैं। ये फल पूर्व-मानसून की वर्षा से पहले पककर जून के प्रथम सप्ताह में पककर तैयार हो जाते हैं एवं फूल खिलने से पकने तक 80-85 दिन लगते हैं। गुच्छों का आकार बड़ा (486 ग्राम), दानों का आकार मध्यम (2.2 ग्राम), गोलाकार एवं मिठास अच्छी (18.3 डिग्री ब्रिक्स) रहती है। मंडप प्रणाली में औसतन उपज 12-13 टन/हैक्टर मिल जाती है। इस किस्म के दानों का आकार समान रूप में होने के कारण शॉट बेरीज से मुक्त रहता है। दानों पर जिब्रेलिक अम्ल का सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। बेल ओजस्वी

बाग की स्थापना

अंगूर का नया बाग लगाने की तैयारी में जमीन की समतलता का बहुत महत्व रहता है। समतल खेत में पानी जमाव नहीं होता है। टपक सिंचाई में उपयोग होने वाले लेटरल एवं एमिटर में पानी समान रूप से चलता रहता है। इसलिए जमीन का ढलान एक प्रतिशत से कम रहना चाहिए। इस तरह की जमीन में रेखांकन के अनुरूप 3.5 मीटर की दूरी पर 0.75 × 0.75 × 0.75 मीटर आकार के गड्ढों की खुदाई अक्टूबर-नवम्बर में करनी चाहिए। खुदे हुए गड्ढों को 15 दिनों तक खुला रखने के पश्चात जमीन की ऊपरी परत वाली मिट्टी से भरना आवश्यक है। प्रत्येक गड्ढे में 15 कि.ग्रा. अच्छी सड़ी गोबर की खाद, 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट, 100 ग्राम सल्फेट ऑफ पोटाश, जिंक तथा लौह तत्व को 50 ग्राम की दर से डालना आवश्यक है। गड्ढे को भरते समय ऊपरी परत वाली मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को भर दें। जहां मिटटी एवं पानी में लवण की मात्रा होती है वहां प्रत्येक गड्ढे में उन्हें भरने से पूर्व 1.5 कि.ग्रा. की दर से जिप्सम डाल देनी चाहिए। जनवरी में जड़ित पौधों की रोपाई करना अच्छा रहता है। पौधा लगाने के पूर्व उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों को मिला देना चाहिए। जनवरी में पौधों की रोपाई करने के पश्चात हल्की सिंचाई करना अति आवश्यक होता है। बेलों को मंडप प्रणाली में ऊपर चढ़ाने के लिए आवश्यक सहारे से तारों तक सुतली से बांध देना चाहिए एवं समय-समय पर पार्श्व-कलियों को निकालते रहना चाहिए, जिससे बेल की बढ़वार सीधी एवं तेजी से बनी रहे।

पूसा त्रिसार

होती है और यह 5-6वीं कली पर गुच्छा देती है। यह संकर किस्म पाउडरी मिल्ड्यू के लिए मामूली सहिष्णु है।

बेलों को सहारा देने की प्रणालियां

अंगूर की बेल मुख्य तने व शाखाओं पर फलों का वजन सहन नहीं कर सकती है, इसलिए बेल को एक विशेष प्रकार की प्रणाली से सहारा दिया जाता है। इसमें पौधे पूर्ण-रूप से सूर्य की रोशनी प्राप्त कर सकते हैं एवं पत्तियों पर छिड़काव अच्छी तरह से किया जा सकता है। देश में विभिन्न प्रणालियों का आंकलन किया गया है जैसे-मंडप, निफ्फिन, एक्सटेंडेड वाई इत्यादि। इन सभी प्रणालियों में मंडप प्रणाली को अधिक प्रभावी एवं एक्सटेंडेड-वाई को मध्यम ओजस्वी किस्मों के लिए उत्तम माना गया है।

बेलों की छंटाई

उत्तर भारत के उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में छंटाई शीत ऋतु के मध्य (दिसंबर से जनवरी) में करते हैं। इस समय तापमान कम होने के कारण समस्त पत्तियां गिर जाती हैं एवं बेलें सुषुप्तावस्था में चली जाती हैं। इस समय पेड़ों में कार्यिक क्रियाएं निम्न स्तर पर रहती हैं। इस प्रकार पौधों में कटाई से नुकसान नहीं पहुंचता है। अंगूर में अधिक एवं स्वस्थ फल लेने के लिए शाखाओं को एक निश्चित संख्या पर काटा जाता है जैसे-पूसा अदिति, पूसा त्रिसार एवं पूसा स्वर्निका को 6 गांठ पर काटा जाता है। इस प्रकार इनमें फलत अच्छी होती है। उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में छंटाई के समय 2 गांठ वाली रिनिवल स्पर (करीब 50 प्रतिशत) छोड़नी चाहिए। यह आने वाले वर्ष में फल देने योग्य हो जाते हैं। कांट-छांट के बाद बेलों पर 0.2 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स का छिड़काव करना चाहिए। पौधों के आधार पर दिखाई पड़ने वाले सभी अंकुरों को हाथ से हटा देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरकों का प्रबंधन

अंगूर अधिक पैदावार देने वाला पौधा है। अत: खाद एवं उर्वरकों का प्रबंधन अतिआवश्यक है। प्रत्येक वयस्क बेल में 25 कि.ग्रा. अच्छी सड़ी गोबर की खाद, 250 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 250 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 200 ग्राम पोटेशियम सल्फेट की आवश्यकता होती है। पोटेशियम सल्फेट की दूसरी मात्रा (200 ग्राम) को दानों के आकार के बढ़वार के समय देना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

उत्तर भारत में अंगूर लगाने के तुरंत बाद गर्मी ऋतु प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार वायुमंडलीय तापमान तेजी से बढ़ जाता है तथा पौधों में पानी की जरूरत को बढ़ा देता है। इस कारणवश पौधों की समय-समय पर उचित मात्रा में सिंचाई करना आवश्यक होता है। सिंचाई, खाद एवं उर्वरक देने के बाद भी आवश्यक होती है। टपक विधि से सिंचाई अधिक उपयोगी रहती है। अंगूर के दानों में रंग परिवर्तन की अवस्था आने पर सिंचाई नहीं करें। इससे मिठास की मात्रा में बढ़त होती है।

फलों की तुड़ाई एवं भण्डारण

जब दानों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा लगभग 18 डिग्री ब्रिक्स हो तो ताजा खाने के उद्देश्य से फलों की तुड़ाई शुरू करनी चाहिए। कुल घुलनशील पदार्थ अम्लता का अनुपात 25-35 के मध्य होने पर भी गुच्छों की तुड़ाई कर सकते हैं। तुड़ाई के बाद फलों को 1-4 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं 90-95 प्रतिशत आर्द्रता वाले स्थान पर भण्डारित किया जा सकता है। पूसा संस्थान से विमोचित किस्में शीघ्र पकने वाली हैं और इन्हें उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। ये किस्में पूर्व मानसून की वर्षा आने से पहले पक जाती हैं तथा बाजार में अच्छा भाव भी देती है। इसके साथ ही ये किस्में पेय (पूसा अदिति एवं पूसा त्रिसार) एवं मुनक्का (पूसा स्वर्णिका) बनाने के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

पौध संरक्षण के उपाय

उत्तर भारत में अंगूर के बागों में आमतौर पर कीट तथा रोग की ज्यादा समस्या नहीं आती है। कुछ कीट जैसे-दीमक, पत्ती खाने वाला कीट (फ्ली या बीटल, ग्रास हॉपर इत्यादि) बेल की पत्तियों को खाकर पौधे को हानि पहुंचाते हैं। दीमक की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरिफॉस (5 मि.ली./लीटर पानी) के घोल का उपयोग समय-समय पर करें। फ्ली बीटल तथा ग्रास हॉपर की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड (3 मि.ली./10 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें।

अंगूर की पत्तियों एवं दानों पर मुख्यत: एंथ्रेक्नोज और पाउडरी मिल्ड्यू रोग आते हैं। ब्लाइटॉक्स (3 ग्राम/लीटर) का छिड़काव एंथ्रेक्नोज तथा पाउडरी मिल्ड्यू रोग के लक्षण पड़ने पर तुरंत करें एवं केराथेन (3 ग्राम/लीटर) का पाउडरी मिल्ड्यू की रोकथाम के लिए छिड़काव करें।

अंगूर की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए जैव नियामकों का उपयोग

- वानस्पतिक आंखों के शीघ्र फुटाव के लिए कांट-छांट उपरांत डार्मेक्स/ डोरब्रेक (30 मि.ली./लीटर पानी में) का छिड़काव करें।
- सुषुप्त आंखों के पूर्ण फुटाव के लिए थायोयूरिया (20 ग्राम/लीटर पानी में) के दो छिड़काव करें।
- जिब्रेलिक अम्ल का पहला छिड़काव गुच्छा निकलने पर (10 पी.पी.एम.) तथा दूसरा छिड़काव गुच्छे की बढ़वार के समय (10 पी.पी.एम.) करने से गुच्छे का आकार बढ़ने में सहायता मिलती है। फूलों के विरलन के लिए जिब्रेलिक अम्ल के 20 पी.पी.एम. का छिड़काव करते हैं एवं बाद में दो छिड़काव जब दानों का आकार 2 मि.मी. एवं 7 मि.मी. हो जाए, तब करने से दानों की लम्बाई एवं मोटाई बढ़ाने में मदद मिलती है।
- पौधों पर फलों को जल्द पकाने के लिए इथ्रेल (1 मि.ली./4 लीटर पानी में) का छिड़काव दानों की रंग बदलने की अवस्था पर करें।

अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बेल की बागवानी

ए.के. सिंह*, संजय सिंह*, पी.एल. सरोज*, डी.एस. मिश्रा* और **विकास यादव***

बेल महत्वपूर्ण गुणों से भरपूर, भारत का देशज फल वृक्ष है। इसके लिये कहा गया है-*'रोगान बिलति भिन्ति इति बिल्व'* अर्थात जो रोगों का नाश करे, वह बेल कहलाता है। वैदिक साहित्य में इसे 'दिव्य वृक्ष' के नाम से जाना जाता है। प्राचीनकाल से बेल को 'श्रीफल' के नाम से भी जानते हैं। प्रतिकूल जलवायु एवं परिस्थितियों में भी इसकी बागवानी सफलतापूर्वक की जा सकती है। केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र पर प्रयोग के उपरांत यह निष्कर्ष सामने आया कि बेल बारानी बागवानी के लिए एक उपयुक्त फल वृक्ष है। आज के संदर्भ में, इस बदलते परिवेश में लोग औषधीय फलों के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। ऐसे में बेल की बागवानी काफी उपयोगी हो गई है। प्रस्तुत आलेख में अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बेल की बारानी (वर्षा आधारित) खेती का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

फल विशेषांक

बेल, भारत के प्राचीन फलों में से एक है। इसके पंचांग (जड़, छाल, पत्ते, शाख एवं फल) औषधि के रूप में मानव के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। बेल के औषधीय गुणों का वर्णन यजुर्वेद, जैन साहित्य, उपवन विनोद, चरक संहिता और बृहत संहिता में विस्तृत रूप से मिलता है। इसके फलों का सेवन करने से हृदय को ताकत और दिमाग को ताजगी मिलती है। इसके सेवन से पेट से संबंधित अनेक रोगों के साथ-साथ मधुमेह, रक्तचाप तथा अन्य रोगों से भी बचा जा सकता है। बेल अपनी विशेषताओं, जैसे-प्रति इकाई उच्च उत्पादकता, विविध प्रकार की बंजर भूमि में उगाने के लिए उपयुक्तता, विभिन्न प्रकार की जलवायु के प्रति सहनशीलता, पोषण तथा औषधीय गुणों से भरपूर एवं विभिन्न प्रकार के परिरक्षित उत्पाद बनाने के लिए उपयुक्तता एवं अधिक समय तक भण्डारण क्षमता के कारण 21वीं सदी में प्रमुख फल के रूप में स्थापित होने जा रहा है। उत्तर भारत में इसका उपयोग गर्मी के महीने में शरबत के रूप में बहुतायत से किया जाता है। पश्चिम भारत के लोग ज्यादातर इसका उपयोग धार्मिक रूप से ही करते हैं, जबकि इसकी वृद्धि, विकास, फलन एवं उत्पादन के मूल्यांकन से यह ज्ञात हुआ कि बेल की बागवानी वर्षा आधारित अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

बेल की वर्षा आधारित बागवानी

*केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र (भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान) वेजलपुर, गोधरा (गुजरात)

बेल वृक्ष

पंत अपर्णा

इस किस्म के बेल वृक्ष घने तथा मध्यम ऊंचाई लिए होते हैं। इसकी शाखाएं नीचे की ओर लटकती रहती हैं। पत्तियां बड़ी, गहरे रंग एवं नाशपाती की तरह होती हैं। वृक्षों पर कांटे भी कम पाये जाते हैं। फसल जल्दी एवं उपज अच्छी होती है। इसके फल गोलाकार (13.00 × 12.00 सें.मी.) एवं 0.8 से 1.10 कि.ग्रा. भार के पतले छिलके वाले होते हैं। पकने पर फलों का रंग हल्का पीला होता है। इसमें बीज, लिसलिसा पदार्थ (म्यूसिलेज), खटास एवं रेशा कम पाया जाता है। लिसलिसा पदार्थ तथा बीज अलग थैलियों में बंद होता है, जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है। यह किस्म प्रसंस्करण के लिए ज्यादा उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। पंत अपर्णा के फलों का गूदा मध्यम मीठा (34^0 ब्रिक्स) स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होता है। इसके आठ वर्ष के वृक्ष से 107.23 कि.ग्रा. तक औसत उपज प्राप्त होती है।

भूमि

बेल किसी भी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है, परन्तु जल निकासयुक्त बलुई दोमट मृदा, इसकी बागवानी के लिये अधिक उपयुक्त है। क्षतिग्रस्त जमीन, जैसे-ऊसर, बंजर, कंकरीली, खादर एवं बीहड़ भूमि में भी इसकी बागवानी सफलतापूर्वक की जा सकती है। वैसे तो बेल की बागवानी के लिए 6-8 पी-एच मान वाली मृदा अधिक उपयुक्त होती है। ऐसी मृदाएं जिसमें विनिमयशील सोडियम 20-30 प्रतिशत, क्षारीयता स्तर पी-एच मान 9 तथा विद्युत चालकता 6 एमएच प्रति सें.मी. तक हो, बेल की व्यावसायिक बागवानी के लिए उपयुक्त कही जा सकती हैं। क्षार अधिक होने पर जिप्सम का प्रयोग करना चाहिए।

जलवायु

बेल एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है, फिर भी इसे उष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसकी बागवानी समुद्र तल से 1200 मीटर ऊंचाई तक और 7^0-46^0 सेल्सियस तापमान तक सफलतापूर्वक की जा सकती है। प्राय: बेल की टहनियों पर कांटे पाये जाते हैं। अप्रैल-मई की गर्मी के समय इसकी पत्तियां गिर जाती हैं। इसमें शुष्क जलवायु के सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। ऐसे क्षेत्र जहां पाला पड़ता हो, या जहां पर जमीन में पानी एकत्रित होता हो, में इसकी बागवानी करने में कठिनाई होती है।

किस्में

बेल में विपुल जैव विविधता पाई जाती है। कृषि विश्वविद्यालयों एवं भाकृअनुप के अनुसंधान संस्थानों की चयनित किस्मों के प्रचलन में आने के कारण पूर्व में विकसित किस्मों जैसे-सिवान, देवरिया बड़ा, कागजी, इटावा, चकिया, मिर्जापुरी कागजी गोण्डा आदि के रोपण की संस्तुति अब नहीं की जा रही है। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में कुछ प्रमुख प्रजातियों की वृद्धि-विकास, पैदावार तथा फलों के गुणों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

नरेन्द्र बेल-5

इस किस्म के वृक्ष कम ऊंचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिए होते हैं। फल सिरे पर थोड़ा चपटे, मध्यम आकार (11.50-12.00 सें.मी.), मीठे स्वाद (32^0-36^0 ब्रिक्स) तथा कम बीज वाले होते हैं। इनका छिलका (1.7 मि.मी.) बहुत पतला होता है। गूदा कम रेशायुक्त, मुलायम और अच्छे स्वाद वाला होता है। फलों का औसत वजन 700-1200 ग्राम तक होता है। अर्द्धशुष्क क्षेत्र में दस वर्ष के पौधे से औसत उपज 64.20 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष प्राप्त होती है।

नरेन्द्र बेल-5

नरेन्द्र बेल-9

नरेन्द्र बेल-9

इस किस्म के वृक्ष मध्यम ऊंचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिए घने होते हैं। फल आकार में बड़े (16.00 × 13.50 सें.मी.) गोल, अंडाकार तथा स्टॉक से जुड़े होने पर बाटलनेक आकार के होते हैं। फल अधिक मिठासयुक्त (34^0-40^0 ब्रिक्स) होते हैं। इन फलों का औसत वजन 1.2-1.8 कि.ग्रा. तक होता है तथा छिलका अपेक्षाकृत पतला होता है। गूदे में रेशे एवं बीज की मात्रा कम पायी जाती है। अर्द्धशुष्क क्षेत्र में दस वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 98.78 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष प्राप्त होती है।

नरेन्द्र बेल-16

इस किस्म के वृक्ष मध्यम ऊंचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिए घने होते हैं। फल आकार में बड़े (12.00 × 10.00 सें.मी.)

नरेन्द्र बेल-16

नरेन्द्र बेल-7

इस किस्म के वृक्ष मध्यम ऊंचाई तथा अपेक्षाकृत अधिक फैलाव लिए होते हैं। फल के सिरे गोल चपटे और काफी बड़े (18.25 × 22.50 सें.मी.) होते हैं। फलों का औसत वजन 3-4.5 कि.ग्रा. तक होता है। फलों में रेशे एवं बीज की मात्रा कम पायी जाती है। नरेन्द्र बेल-7 के दस वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 73.80 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक प्राप्त होती है। फल का आकार बड़ा होने के कारण यह पूर्णरूप से पकता नहीं है। इसलिए यह परिरक्षित पदार्थ बनाने के लिये उपयुक्त है।

गोल, अंडाकार तथा अधिक मिठासयुक्त (34^0 ब्रिक्स) होते हैं। फलों का औसत वजन 0.7-0.8 कि.ग्रा. तक होता है तथा फलों का छिलका (0.35 सें.मी.) मोटा होता है। गूदे में रेशे एवं बीज की मात्रा अधिक पायी जाती है। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में दस वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 72.13 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक प्राप्त होती है।

पंत सिवानी

इस किस्म के वृक्ष ऊपर की तरफ बढ़ने वाले एवं घने होते हैं। फल लंबे अंडाकार (18.50 × 15.00 सें.मी.), प्रति फल वजन 1.5-2.5 कि.ग्रा., मध्यम पतला छिलका, गूदा

पंत सिवानी

अधिक (70-72 प्रतिशत), रेशा अधिक, अच्छी मिठास (35^0 ब्रिक्स) एवं स्वादिष्ट होते हैं। फलों की भण्डारण क्षमता अपेक्षाकृत अच्छी होती है। आठ वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 84.18 कि.ग्रा. तक पायी जाती है। इस वृक्ष पर कांटे बहुत कम या तो नहीं पाये जाते हैं।

पंत उर्वशी

इस किस्म के वृक्ष घने, वृद्धियुक्त एवं लंबे होते हैं। यह एक मध्यम समय (मई) में पकने वाली किस्म है। फलों का आकार अंडाकार लंबा (14.50 सें.मी × 17.10 सें.मी.) तथा औसत प्रति फल वजन

पंत उर्वशी

नरेन्द्र बेल-17

इस किस्म के वृक्ष मध्यम ऊंचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिए घने होते हैं। फल आकार में बड़े (20.00 × 15.50 सें.मी.) गोल, अंडाकार तथा अधिक मिठासयुक्त (34^0 ब्रिक्स) होते हैं। इसके फलों का औसत वजन 1.5-2.10 कि.ग्रा. तक होता है तथा फलों का छिलका अपेक्षाकृत पतला होता है। गूदे में रेशे एवं बीज की मात्रा अधिक पायी जाती है। अर्द्धशुष्क क्षेत्र में नरेन्द्र बेल-17 से प्राप्त दस वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 61.15 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक होती है।

गोमा यशी

केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र द्वारा बेल की एक उत्तम प्रजाति का चयन पद्धति से विकास किया गया है, जिसे हाल ही में पश्चिम भारत में लगाने के लिए सिफारिश की गई है। गोमा यशी नामक बेल के इस वृक्ष का आकार अपेक्षाकृत बौना है। इस वृक्ष पर कांटे बहुत कम या तो नहीं पाये जाते हैं। फल का वजन पारिवारिक जरूरतों के अनुरूप लगभग 1.41 कि.ग्रा. है। इसके फलों का टी.एस.एस. 39^0 ब्रिक्स है। बीज एवं रेशे की मात्रा बहुत कम तथा छिलका बहुत पतला (0.15 सें.मी.) होता है। गूदा पकने के बाद छिलके से अलग हो जाता है, जिसको आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है। गोमा यशी की अर्द्धशुष्क क्षेत्र में बारानी बागवानी से आठ वर्ष के वृक्ष से 95 कि.ग्रा. तक फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते हैं। इसमें गूदे की मात्रा 76 प्रतिशत है। इसके फल स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होते हैं। इससे बहुत से प्रसंस्करित पदार्थ तथा शरबत बनाए जा सकते हैं और इसके गूदे को चम्मच से भी खाया जा सकता है। यह प्रजाति बारानी खेती में सघन बागवानी (5 × 5 मीटर) के लिए उपयुक्त पाई गई है।

1.9 कि.ग्रा. तक होता है। छिलका मध्यम पतला, गूदा मीठा (32⁰ ब्रिक्स) स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होता है। फलों में गूदे की मात्रा 68.5 प्रतिशत एवं रेशे की मात्रा कम होती है। आठ वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 65.95 कि.ग्रा. प्राप्त होती है।

पंत सुजाता

इस किस्म के वृक्ष मध्यम आकार, घने एवं फैलने वाले होते हैं। यह शीघ्र फलन एवं मध्यम समय (मई) में पकने वाली प्रजाति है। फल गोल तथा इसके दोनों सिरे चपटे होते हैं। फलों का औसत भार 1.2-1.9 कि.ग्रा., छिलका हल्का पीला एवं पतला, गूदा मीठा (30⁰ ब्रिक्स) तथा कम रेशायुक्त होता है। फलों में गूदे की मात्रा 70 प्रतिशत तक पायी जाती है। दस वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 69.13 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक की होती है।

पंत सुजाता

सीआईएसएचबी-2

इस किस्म के वृक्ष कम ऊंचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिये होते हैं। इसके फल, आकार में बड़े, लंबाई 16.00 सें.मी. एवं गोलाई 14 सें.मी. व लंबे गोल होते हैं। फलों का वजन 1.7-2.5 कि.ग्रा. तक होता है। फल अधिक मिठासयुक्त (30⁰-34⁰ ब्रिक्स) एवं मोटे छिलके वाले होते हैं। फलों में रेशे एवं बीज की मात्रा काफी कम होती है। इस प्रजाति के दस वर्ष के वृक्ष की औसत उपज 78.75 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक प्राप्त की जा सकती है। यह किस्म अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जून में पकना प्रारंभ करती है। इसमें फलों को सितंबर-अक्टूबर तक वृक्ष पर रहने दिया जाता है।

सीआईएसएचबी-2

थार दिव्य

केन्द्र ने चयन पद्धति से अगेती प्रजाति थार दिव्य का विकास किया है। मूल्यांकन के दौरान यह पाया गया कि शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के लिए इस प्रजाति में वृद्धि, विकास एवं फलन उत्तम है तथा यह विविध गुणों से भरपूर है। इसके वृक्ष पर कांटे बहुत कम होते हैं। इसके फलों का वजन पारिवारिक जरूरतों के अनुरूप लगभग 1.51 से 2.00 कि.ग्रा. तक होता है। फलों का रंग पीला,

थार नीलकंठ

बेल के विविध जननद्रव्यों (190) का मूल्यांकन एवं संग्रहण करके चयन पद्धति से गोमा यशी, थार दिव्य प्रजाति के बाद नई प्रजाति थार नीलकंठ का विकास किया गया है। मूल्यांकन के दौरान यह पाया गया कि शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के लिए इस प्रजाति की वृद्धि, विकास एवं फलन अति उत्तम है तथा यह विविध गुणों से भरपूर है। इसके वृक्ष मध्यम आकार के तथा वृक्ष पर कांटे बहुत कम होते हैं। फल का वजन लगभग 1.51 कि.ग्रा. तक होता है। फलों का रंग पकने पर पीला, आकार गोल एवं फल आकर्षक होते हैं। फल के गूदे का टीएसएस 41.20⁰ ब्रिक्स से अधिक होता है। बीज की मात्रा बहुत कम (120.00) तथा छिलका मध्यम पतला (0.18 सें.मी.) होता है। थार नीलकंठ की अर्द्धशुष्क क्षेत्र में बारानी बागवानी से दस वर्ष के वृक्ष से 101.60 कि.ग्रा. तक फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते हैं। इसके फलों में गूदे की मात्रा 75 प्रतिशत तक होती है। फल स्वादिष्ट, सुवासयुक्त एवं बहुत मिठासयुक्त होते हैं। इसके गूदे में टी.एस.एस. एवं अम्लता का अनुपात (142.07) बहुत अधिक होता है। इसके फल में एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा (105.17 क्यूप्रेक माइक्रो मोल टी ई/ग्राम) बहुत अधिक होती है। थार नीलकंठ फलों को प्रसंस्करित उत्पाद जैसे कि स्क्वैश, पाउडर तथा उच्च कोटि का शरबत बनाने के योग्य पाया गया है।

सीआईएसएचबी-1

इस किस्म के वृक्ष मध्यम ऊंचाई तथा ऊपर की तरफ बढ़ने वाले एवं कम फैलाव लिये होते हैं। इसके फल आकार में अंडाकार गोल, लंबाई 15-17 सें.मी., गोलाई 39-41 सें.मी. तथा अधिक मिठासयुक्त (35⁰ ब्रिक्स) होते हैं। फलों का औसत वजन 1.10 कि.ग्रा. तथा छिलका पतला (0.10-0.12 सें.मी.) होता है। फलों में रेशे कम और बीज की मात्रा अधिक पायी जाती है। सीआईएसएच-1 के दस वर्ष के वृक्ष से औसत उपज 92.67 कि.ग्रा. तक प्राप्त की जा सकती है।

थार दिव्य

आकार गोल एवं आकर्षक होता है। फल के गूदे का टी.एस.एस. 38^0 ब्रिक्स से अधिक होता है। बीज की मात्रा बहुत कम तथा छिलका मध्यम पतला (0.19 सें.मी.) होता है। अर्द्धशुष्क क्षेत्र में बारानी खेती से थार दिव्य के दस वर्ष के वृक्ष से 105.79 कि.ग्रा. तक फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते हैं। इसके फलों में गूदे की मात्रा 72-74 प्रतिशत होती है। फल स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होते हैं। इसका फल संरक्षण पदार्थ (पाउडर) तथा उच्च कोटि का शरबत बनाने के योग्य पाया गया है। यह अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की सभी प्रजातियों में सबसे पहले पककर (260 दिनों) तैयार हो जाता है। इन्हीं लाभकारी विशिष्टताओं की वजह से थार दिव्य के पौधों की शुष्क एवं अर्द्धशुष्क बारानी क्षेत्रों में लगाने के लिए संस्तुति की जाती है।

प्रवर्धन

बेल के पौधे मुख्य रूप से बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं। बीजों की बुआई फलों से निकालने के तुरन्त बाद 15-20 सें.मी. ऊंची एवं 1 × 10 मीटर की क्यारियों (नर्सरी क्यारी) में 1-2 सें.मी. की गहराई पर की जाती है। बुआई का उत्तम समय मई-जून होता है। व्यावसायिक स्तर पर बेल की बागवानी के लिए पौधों को चश्मा (पैच) विधि से तैयार करना चाहिए। चश्मा की विभिन्न विधियों में मई-जून में पैबन्दी में चश्मा विधि द्वारा 80-90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। स्वस्थाने (इन-सीटू) पैच चश्मा (पैच) विधि से 98 प्रतिशत से ज्यादा सफलता वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्राप्त की जा सकती है और सांकुर डाली की वृद्धि भी अच्छी होती है। कलिका को 1-2 महीने की शाख से लेना चाहिए तथा पुराने बेल के बीजू पौधे पर ध्रुवता को ध्यान में रखते हुए चढ़ाना चाहिए। पॉली एवं नेट हाउस की सहायता से कोमल शाख बंधन तकनीक द्वारा बेल का प्रवर्धन वर्ष के अन्य महीनों में भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस विधि में क्लेफ्ट या वेज विधि से ग्राफ्टिंग करके 70-80 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस विधि से सफलता प्राप्त करने के लिए पॉली हाउस का तापमान $28-30^0$ सेल्सियस, आपेक्षिक आर्द्रता 70-75 प्रतिशत एवं 30 मिनट फुहारे का अंतराल रखना उचित होता है।

सॉफ्ट-वुड पैच बडिंग

पैच बडिंग

गड्ढे की तैयारी एवं पौध रोपण

बेल के वृक्षों की रोपाई 6-8 मीटर की दूरी पर मृदा उर्वरता के अनुसार करनी

सॉफ्ट-वुड ग्राफ्टिंग

फलों का झुलसना एवं फलों का फटना

फलों का फटना

फलों का झुलसना

सूखे क्षेत्र में तापमान की वजह से फलों के छिलके भूरे तथा काले पड़ जाते हैं। कभी-कभी तो गूदे पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। फलों के जले भाग पर सूर्य की किरणें लंबे समय तक पड़ती हैं। छिलके का तापमान वातावरण की तुलना में 8^0 से 10^0 सेल्सियस ज्यादा हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए कैनोपी मैनेजमेन्ट को काफी हद तक कारगर कहा जा सकता है। फलों का फटना भी ज्यादातर जमीन में नमी की अनियमितता और सूक्ष्म तत्वों की कमी से होता है। इनका प्रबंधन करने से काफी हद तक बचा जा सकता है।

प्रसंस्करित उत्पाद

बेल अचार

बेल पाउडर

बेल शरबत

कच्चे बेल का मुरब्बा एवं कैंडी बनाकर उपयोग किया जा सकता है। कच्चे बेल को भूनकर खाने से भूख की समस्या एवं अन्य पेट के विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है। पके बेल के गूदे को सुखाकर पाउडर के रूप में प्रतिदिन दूध के साथ लेने से पेट संबंधित रोगों से लाभ पाया जा सकता है। पके बेल फलों के गूदे से पल्प स्क्वैश टॉफी, जैम, पाउडर बनाकर प्रयोग किया जा सकता है। गर्म मौसम में नियमित बेल के गूदा का सीधा या शरबत बनाकर सेवन करना अत्यन्त लाभदायी होता है। पूरे मौसम बेल का सेवन करने से पेट सम्बंधित विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है।

चाहिए। रोपण के लिए जुलाई-अगस्त का समय अच्छा पाया गया है। पौधे लगाने के एक माह पूर्व 75 से 100 घन सें.मी. के गड्ढे तैयार कर लेते हैं। यदि जमीन में कंकड़ की तह हो तो उसे निकाल देना चाहिए। इन गड्ढों को 20-30 दिनों तक खुला छोड़कर 3-4 टोकरी गोबर की सड़ी खाद को गड्ढे की ऊपरी आधी मिट्टी में मिलाना चाहिए। ऊसर भूमि में 20-25 कि.ग्रा. बालू तथा पी-एच. मान के अनुसार 5-8 कि.ग्रा. जिप्सम/पाइराइट भी मिलाकर 6-8 इंच की ऊंचाई करना उपयुक्त होता है। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में, जहां सिंचाई की समुचित व्यवस्था न हो, वहां स्वस्थाने बाग स्थापन विधि को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। गोमा यशी प्रजाति बारानी क्षेत्रों में सघन बागवानी (5 × 5 मीटर) के लिए उपयुक्त पाई गई है।

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग

पौधों की अच्छी बढ़वार, अधिक फलन एवं वृक्षों को स्वस्थ रखने के लिये प्रत्येक वृक्ष में 10 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस एवं 50 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति वर्ष डालनी चाहिए। खाद एवं उर्वरक की यह मात्रा दस वर्ष तक गुणित अनुपात में बढ़ाते रहना चाहिए। इस प्रकार 10 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले वृक्ष के लिए 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस और 500 ग्राम पोटाश के अतिरिक्त 50 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद डालना उचित होता है। ऊसर भूमि में लगाये गये पौधों में प्राय: जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसे वृक्षों में 250 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति पौधे की दर से उर्वरकों के साथ डालनी चाहिये या 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव जुलाई, अक्टूबर एवं दिसंबर में करना चाहिए। खाद एवं उर्वरकों की पूरी मात्रा जून-अगस्त में डालनी चाहिए। जिन बागों में फलों के फटने की समस्या हो, उनमें खाद एवं उर्वरक के साथ 100 ग्राम/वृक्ष बोरेक्स (सुहागा) का प्रयोग करना चाहिये।

बेल में सधाई, छंटाई एवं छत्रक प्रबंधन

सिंचाई

नये पौधों को स्थापित करने के लिए एक दो वर्ष सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। स्वस्थापित पौधे बिना सिंचाई के भी अच्छी तरह से रह सकते हैं। गर्मियों में बेल का पौधा अपनी पत्तियां गिराकर सुषुप्तावस्था में चला जाता है और इस तरह यह सूखे को सहन कर लेता है। सिंचाई की सुविधा होने पर मई-जून में नई पत्तियों के आने के बाद 20-30 दिनों के अंतराल पर दो सिंचाई करनी चाहिए।

पलवार

बारानी खेती के लिए जैविक पलवार नमी संरक्षित करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसके लिए जैविक पलवार में पौधे के तने के चारों तरफ 4 वर्गमीटर में 20 सें.मी. मोटी पलवार करने से बेसिन की मिट्टी में केंचुओं और सूक्ष्मजीवों की मात्रा बढ़ जाती है तथा मिट्टी की नमी बरकरार रहती है। इससे पौधे के विकास तथा पैदावार पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

सधाई, छंटाई एवं छत्रक प्रबंधन

पौधों की सधाई, सुधरी प्ररोह विधि से करना उत्तम होता है। यह कार्य शुरू के 2-4 वर्षों में ही करना चाहिए। मुख्य तने को 75 सें.मी. तक अकेला रखना चाहिए। इसके बाद 4-6 मुख्य शाखायें चारों दिशाओं में बढ़ने देनी चाहिए। बेल के वृक्षों में विशेष सधाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सूखी तथा कीटों एवं रोगों से ग्रसित टहनियों को समय-समय पर निकालते रहना चाहिए। पौधे में इच्छानुसार घेराव (कैनोपी) का प्रबंधन किया जा सकता है। इसकी डालियों को, जब पौधा पत्तियां गिरा चुका हो, उस समय एक वर्ष पुरानी शाखा को 25 प्रतिशत हिस्सों से काट देना चाहिए। कटे हुए भाग के नीचे से नई शाखाएं निकलती हैं। इससे पौधे का घेराव घना हो जाता है। इस प्रकार सूर्य के ताप से फल के झुलसने की आशंका कम हो जाती है।

अंत:फसलें

आरंभ में इसके बाग में अंत: फसलें भी ले सकते हैं। वर्षा आधारित बागवानी में कद्दूवर्गीय सब्जियों जैसे कि लौकी, कद्दू, करेला, खीरा इत्यादि को उगाकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अंत:फसल लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये फसलें ऐसी हों जिन्हें पानी की अधिक आवश्यकता न हो, अन्यथा मुख्य फसलें प्रभावित होती हैं। इसके अनुपजाऊ भूमि में लगाये गये बागों में सनई अथवा ढैंचा की फसलें लगाकर उन्हें वर्षा ऋतु में पलट देने से भूमि की उर्वरता में भी सुधार किया जा सकता है।

रोग एवं कीट प्रबंधन

रोग

बेल कैंकरः यह रोग जैन्थोमोनस विल्वी बैक्टीरिया द्वारा होता है। प्रभावित भागों पर पनीले धब्बे बनते हैं और बाद में ये बढ़कर भूरे रंग के हो जाते हैं। समय बढ़ने के साथ प्रभावित भाग का ऊतक गिर जाता है और पत्तियों पर छिद्र बन जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिये स्टेप्टोसाइक्लीन (200 पीपीएम) को पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

छोटे फलों का गिरनाः इस रोग का प्रकोप फ्यूजेरियम नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग में एक भूरा छोटा घेरा फल के ऊपरी हिस्से पर विकसित होता है। डंठल एवं फल के बीच फफूंद विकसित होने से जुड़ाव कमजोर हो जाता है और फल गिर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए जब फल छोटे हों तो बाविस्टीन (0.1 प्रतिशत) के दो छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करने चाहिए।

डाईबैकः इस रोग का प्रकोप लेसियोडिप्लोडिया नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग में पौधों की टहनियां ऊपर से नीचे की तरफ सूखने लगती हैं। टहनियों एवं पत्तियों पर भूरे धब्बे नजर आते हैं एवं पत्तियां गिर जाती हैं। रोग के नियंत्रण के लिए सूखी टहनियों को छांट कर ब्लाईटॉक्स (0.3 प्रतिशत) के दो छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करने चाहिए।

बेल के साथ अंतःफसलें

फलों का गिरना/आंतरिक विगलनः बेल के बड़े फल अप्रैल-मई में बहुतायत में गिरते हैं। गिरे फलों में आंतरिक विगलन के लक्षण पाये जाते हैं। इसके साथ ही बाह्य त्वचा में हल्की फटन हो जाती है तथा फल तेजी से सड़ जाते हैं। ऐसे फलों के अंदर एस्परजिलस फफूंद विकसित होती है तथा अंदर का गूदा अधिक मुलायम एवं तीक्ष्ण गंध वाला हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिये, जिससे फल जमीन पर न गिरें एवं फलों की त्वचा पर फटन न होने पाये। साथ ही ऐसे फल मृदा के संपर्क में भी नहीं आने चाहिए। पश्चिम भारत के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में इसकी समस्या बहुत कम पाई जाती है।

फलों का फटना एवं गिरना

पत्तियों का काला धब्बाः बेल की पत्तियों की दोनों सतहों पर काले धब्बे बन जाते हैं, जिनका आकार आमतौर पर 2-3 मि.मी. का होता है। इन धब्बों पर काली फफूंद नजर आती है, जिसे इसारियोप्सीस कहते हैं। इसकी रोकथाम के लिए जब नई पत्तियां निकल रही हों तब बाविस्टीन (0.1 प्रतिशत) के 2 से 3 छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करने चाहिए।

कीटः बेल को बहुत कम कीट नुकसान पहुंचाते हैं। पर्ण सुरंगी एवं पर्णभक्षी इल्ली इसे हानि पहुंचाते हैं। ये वृक्ष की पत्तियों का काटकर नुकसान करती हैं। इन कीटों की रोकथाम के लिए रोगर (0.5 प्रतिशत) या थायोडान (0.7 प्रतिशत) का छिड़काव एक सप्ताह के अंतराल पर करना चाहिये।

फलों की तुड़ाई एवं उपजः अर्द्धशुष्क वर्षा आधारित क्षेत्रों में बेल के फल फरवरी के अंत से तोड़ने योग्य हो जाते हैं। जब फलों का रंग गहरे हरे रंग से बदलकर पीला हरा होने लगे तब फलों की तुड़ाई 2 सें.मी. डंठल के साथ करनी चाहिए। तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि फल जमीन पर न गिरने पायें अन्यथा फलों की त्वचा चटक जाती है। भंडारण के समय इन चटके भागों से सड़न आरंभ हो जाती है। कलमी पौधों में 2-3 वर्षों में फलन प्रारंभ हो जाता है, जबकि बीजू वृक्षों में 7-8 वर्ष में फलन होती है। फलों की संख्या वृक्ष के आकार के साथ बढ़ती रहती है। अर्द्धशुष्क क्षेत्र में पूर्ण विकसित वृक्ष (10-12 वर्ष) से 100-150 कि.ग्रा. तक फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

गोमा यशी की सघन बागवानी (5×5 मीटर), 400 वृक्ष प्रति हैक्टर, से बारानी (वर्षा आधारित) बागवानी से 2 से 3 लाख रुपये आसानी से लाभ कमाया जा सकता है। मूल्यांकन के उपरांत यह पाया गया कि बेल की बारानी खेती (वर्षा आधारित) अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

फल-मसाला-खाद्यान्न की समेकित कृषि प्रणाली

आर.पी. यादव*, जे.के. बिष्ट*, वी.एस. मीणा* और **एम. परिहार***

देश में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के कारण खेती योग्य भूमि कम होती जा रही है। इसके साथ ही खाद्यान्न की मांग में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस बढ़ती हुई खाद्यान्न की मांग को दो या दो से ज्यादा फसलों को साथ-साथ उगाकर अधिक उत्पादन प्राप्त करके पूरा किया जा सकता है। कृषि-वानिकी प्रणाली में काष्ठीय एवं कृषि फसलों को एक साथ लगाकर अधिक उत्पादन लिया जाता है। इसमें काष्ठीय (जंगली एवं फलदार पौधे), कृषि फसलें (अन्न, दालें, सब्जियां, मसाले एवं औषधीय) और साथ में दुधारू पशुओं को भी पाला जाता है। इस प्रकार एक निश्चित भूमि क्षेत्र से विभिन्न उत्पादन एक साथ लिए जा सकते हैं।

फल विशेषांक

पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि-वानिकी पद्धति लकड़ी, चारा, ईंधन, फल आदि प्रदान करती है। इसके अलावा हवा और जलवायु की प्रतिकूल परिस्थितियों से फसल को बचाती भी है एवं मृदा में नमी का संरक्षण करती है। इस प्रकार यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने और वृक्ष की पत्ती के गिरने से होने वाले मृदा कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि के फलस्वरूप मृदा की गुणवत्ता में सुधार करती है। इसके अतिरिक्त कृषि-वानिकी प्रणाली से खेती करने पर यह पाया गया है कि इससे मृदा में उपस्थित विभिन्न एंजाइमों की गतिविधियों में बढ़ोतरी होती है। मृदा एंजाइम, मृदा गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण जैविक सूचक है और यह मृदा की उर्वरता, पोषक तत्वों के चक्रण तथा रूपांतरण के लिए महत्वपूर्ण है।

भाकृअप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा-263601 (उत्तराखंड)

क्या है कृषि-वानिकी

यह प्रणाली भूमि के कुशल उपयोग पर आधारित है। इसमें वृक्षों, कृषि वाली फसलों और पशुओं का एक साथ प्रबंधन किया जाता है, जिससे सतत् रूप से उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाया जाता है। इस प्रकार कृषि-वानिकी के विभिन्न स्वरूप आवश्यकताओं के अनुसार ही प्रचलित हैं जैसे कृषि-बागवानी, वन बागवानी, वानिकी चारागाह इत्यादि।

विलायती अखरोट (पिकानट) आधारित कृषि बागवानी प्रणाली

विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा में विलायती अखरोट (लगभग 18 वर्ष पुराने) आधारित कृषि-बागवानी प्रणाली का अध्ययन किया गया। इसमें हल्दी की चार विभिन्न प्रजातियों को इसके साथ एवं बिना इसके (खुले में) उगाया गया। इसमें यह पाया गया कि हल्दी की सभी चारों प्रजातियों की उपज बिना विलायती अखरोट (खुले में) की तुलना में 5.9 प्रतिशत अधिक प्राप्त हुई।

हल्दी की चारों प्रजातियों की औसत उपज भी बिना विलायती अखरोट की तुलना में 5.4, 8.4, 8.2 एवं 1.5 अधिक प्राप्त हुई। इसका प्रमुख कारण हल्दी का एक छाया प्रिय पौधा होना है। इसके साथ ही हल्दी के पौधों की पत्तियों की सड़न से मृदा की उपजाऊ क्षमता एवं कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ती है और नमी बनी रहती है। इसके साथ ही खरपतवार में कमी आती है। हल्दी

आड़ू आधारित कृषि बागवानी प्रणाली में गेहूं

कृषि वानिकी से लाभ

इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे पर्यावरण सुधार में मदद मिलती है। इसके साथ ही लकड़ी तथा फलों की प्राप्ति होती है। यह भी कहा जाता है कि पेड़ों पर वर्षा निर्भर रहती है। कृषि-वानिकी उर्वरता को बढ़ाने, मृदाक्षरण को रोकने एवं जलवायु परिवर्तन को कम करने में भी सक्षम है। यह किसानों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास को सुनिश्चित करती है। इस प्रकार कृषि-वानिकी प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन, संसाधन संरक्षण, कार्बन अवशोषण, जैव विविधता संरक्षण और मृदा की उर्वरता एवं संरचना में सुधार करती है।

की प्रजातियों में सबसे अधिक उपज आर.सी.टी-1 (15.3 टन प्रति हैक्टर) से प्राप्त हुई। इसके बाद लोकल कलेक्शन (14.3 टन प्रति हैक्टर), पन्त पीताभ (12.7 टन प्रति हैक्टर) एवं स्वर्णा (11.3 टन प्रति हैक्टर) प्रजातियों से प्राप्त हुई। इसके साथ ही यह भी पाया गया कि विलायती अखरोट के पौधे 65.9 मेगाग्राम कार्बन प्रति हैक्टर सिक्वेंस्ट्रेशन (जब्ती) करते हैं। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में भी ये पौधे अहम भूमिका निभाते हैं।

कृषि-वानिकी पद्धति में मृदा में उपस्थित विभिन्न एंजाइमों जैसे कि यूरियेज, फॉस्फेटेज, डिहाइड्रोजिनेज और बीटा-ग्लूकोसिडेज की गतिविधि में बढ़ोतरी होती है। मृदा एंजाइम मृदा की उर्वरा क्षमता बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। अध्ययन में विलायती अखरोट के साथ हल्दी की खेती करने से यूरियेज एंजाइम में 2-5, फॉस्फेटेज एंजाइम में 10-30, डिहाइड्रोजिनेज में 30-35 और बीटा-ग्लूकोसिडेज में 47-95 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया कि सतही मृदा में उच्च उपसतही मृदा की तुलना में अधिक एंजाइम गतिविधि होती है। इसका सीधा संबंध मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों और कार्बनिक पदार्थ की मात्रा से है, जो कि कृषि-वानिकी पद्धति में अधिकता से पाए जाते हैं।

आडू आधारित कृषि बागवानी प्रणाली में मंडुआ

आडू आधारित कृषि-बागवानी प्रणाली

आडू के लगभग 10 वर्ष पुराने वृक्षों के साथ एवं आडू के बिना (खुले में) खरीफ के मौसम में मंडुआ (रागी) और गेहूं को रबी के मौसम में उगाया गया। मंडुआ की चार विभिन्न प्रजातियों (वी.एल. मंडुआ 149, 324, 315 एवं 347) और गेहूं की चार विभिन्न प्रजातियों (वी.एल. गेहूं 829, 907, 804 एवं 692) को आडू के साथ एवं आडू के बिना उगाया गया। मंडुआ की औसत उपज आडू के साथ अधिक (5.8 प्रतिशत) प्राप्त हुई। मंडुआ की सभी प्रजातियों (वी.एल. मंडुआ 149, 324, 315 एवं 347) की औसत उपज बिना आडू की तुलना में कम (8.5, 7.4, 6.5 एवं 0.64 प्रतिशत) प्राप्त प्राप्त हुई।

इसी प्रकार रबी के मौसम में गेहूं की औसत उपज आडू के साथ 16.9 प्रतिशत कम प्राप्त हुई। गेहूं की विभिन्न प्रजातियों (वी.एल. गेहूं 829, 907, 804 एवं 692) में खुले की तुलना में, 18.6, 8.8, 20.4 एवं 17.8 प्रतिशत आडू के साथ उपज कम हुई। लेकिन जब हम आडू के फल, कटाई-छंटाई की लकड़ी की उपज को सम्मिलित करते हैं, तब कुल आमदनी खुले की तुलना में आडू के साथ में अधिक प्राप्त होती है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए आडू के पौधे से 22.3 मेगाग्राम कार्बन प्रति हैक्टर सिक्वेसट्रेशन (जब्ती) करते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में फल वाले पौधों को कृषि वाली फसलों के साथ लगाने की एक परंपरा भी है। फल वाले पौधों में आडू, प्लम, नाशपाती, चेरी, खुबानी, सेब, सिट्रस, पिकानट आदि प्रमुख हैं। उत्तर-पश्चिमी हिमालय के 17,397 हैक्टर क्षेत्र में खुबानी, 20,314 हैक्टर क्षेत्रफल में आडू, 25,831 हैक्टर क्षेत्रफल में प्लम एवं 3900 हैक्टर क्षेत्रफल चेरी के अंतर्गत हैं। इसी प्रकार उत्तराखंड में आडू 9016 हैक्टर क्षेत्रफल में, खुबानी 8,837 हैक्टर क्षेत्रफल में, प्लम 9571 क्षेत्रफल में, नाशपाती 14921 हैक्टर क्षेत्र में एवं अखरोट 19479 हैक्टर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यह कृषि-वानिकी को बढ़ावा देने में काफी मदद कर सकता है। कुल मिलाकर फल वाली फसलों का फैलाव उत्तराखंड में 1.75 लाख हैक्टर भूमि पर है।

कृषि-वानिकी एक ऐसा अवसर है, जो किसानों को खेती में विभिन्न स्वरूप के साथ ही इनकी आय में वृद्धि करता है। इसमें दो या इससे अधिक घटक होने के कारण एक ही फसल पर निर्भरता में कमी आती है और वर्षभर (गर्मी एवं सर्दी) कृषि उत्पादन मिलता रहता है। कृषि-वानिकी से आर्थिक लाभ ही नहीं बल्कि दीर्घकालिक लाभ भी मिलते हैं। पेड़ों की जड़ें मिट्टी बहाव को भी रोकती हैं। इस प्रकार कृषि-वानिकी मृदा एवं जल संरक्षण में भी काफी मदद करती है। इसमें चारे वाले पौधे एवं फलदार पौधों को लगाया जाता है। इन वृक्षों के बीच में खाली जगह पर फसलों को लगाने से किसानों को विविध उत्पाद मिलते हैं।

क्या है कृषि-बागवानी प्रणाली

इस प्रणाली में फलदार वृक्षों के साथ-साथ कृषि फसलों जैसे-अन्न, दालें, अदरक, हल्दी आदि को लगाया जाता है। इस प्रकार पर्वतीय क्षेत्रों में फल वाले वृक्षों एवं मसाला फसल हल्दी को साथ-साथ लगाया जा सकता है। जंगली पशुओं की समस्या पर्वतीय क्षेत्रों में गहरी है। हल्दी, अदरक आदि फसलों को जंगली पशु पसन्द नहीं करते हैं, जिस कारण इस समस्या से बचा जा सकता है। इसके साथ ही फलदार वृक्षों से फल तो मिलता ही है, इसके साथ-साथ कटाई-छंटाई प्रबंधन में निकली हुई लकड़ी को जलाने के काम में लिया जा सकता है। फल वाले वृक्षों में सर्दी के मौसम में पतझड़ होने पर पत्तियों के सड़न से मृदा की उर्वरता और संरचना में सुधार होता है। इन पत्तियों को कम्पोस्ट बनाने के काम में भी लिया जा सकता है। इससे मृदा की उर्वरता एवं उत्पादन क्षमता को बनाये रखा जा सकता है। इस प्रकार सतत् उत्पादन मिलने के साथ-साथ किसानों की आय में भी वृद्धि होती है।

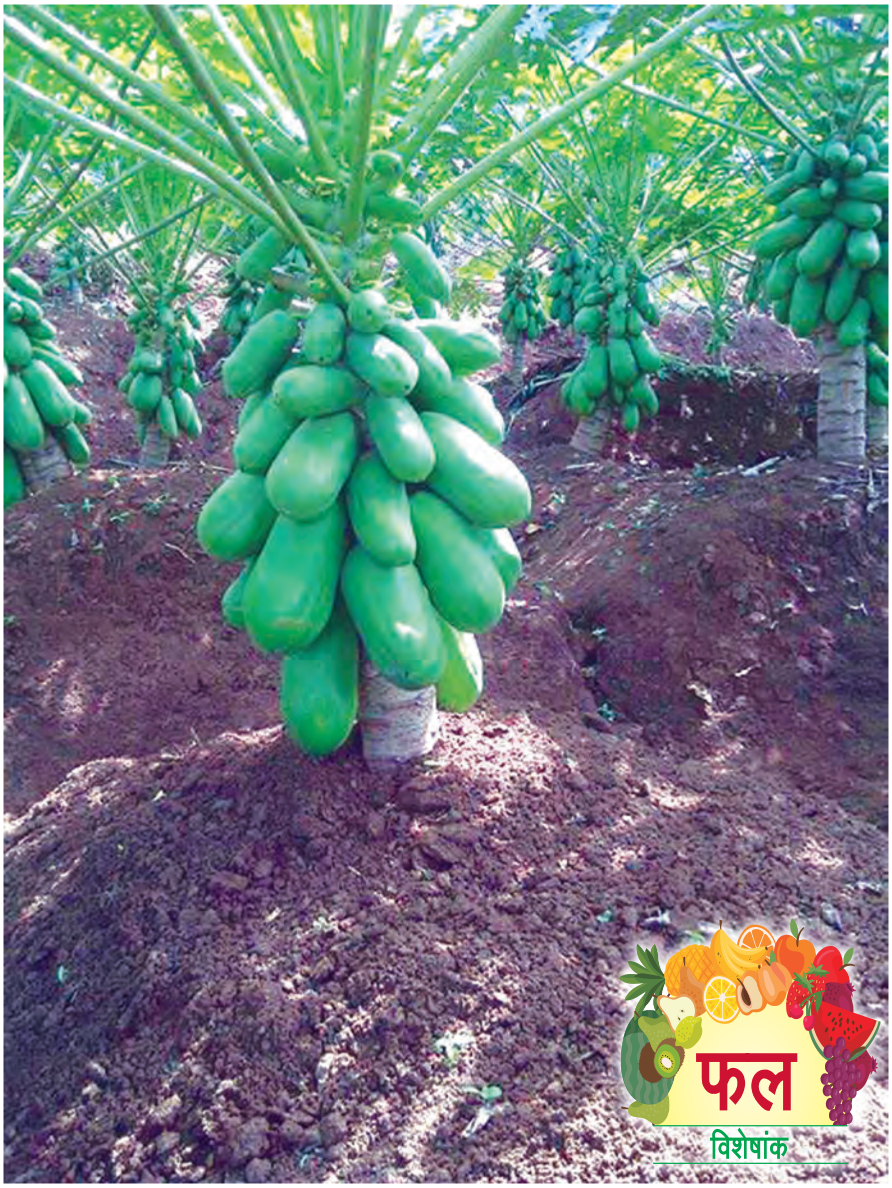

पपीते की उन्नत प्रजातियों की वैज्ञानिक खेती

आर.एस. सेंगर*, आलोक कुमार सिंह* और **डी.के. श्रीवास्तव****

पपीता कैरिकेशी कुल का पौधा है। यह उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाई जाने वाले प्रमुख फलों में से एक है। यह भारत का एक प्राचीनतम पाचक पौष्टिक एवं लोकप्रिय फल है, जिसकी खेती देश के विभिन्न क्षेत्रों में की जाती है। यह अमेरिका का वंशज है और विश्व के बहुत से भागों में उगाया जाता है। पपीते की व्यावसायिक बागवानी भारत, श्रीलंका, दक्षिण अफ्रीका एवं अमेरिकी महाद्वीप के देशों में की जाती है। इसके फलों का दूध विभिन्न प्रकार के रोग एवं व्याधियों के उपचार के लिए उपयोग में लाया जाता है।

पपीते में उपलब्ध विटामिन 'ए' की मात्रा सारे फलों में आम के बाद दूसरे स्थान पर है। पपीते में विभिन्न प्रकार के पुष्पक्रम पाए जाते हैं। इसके पुष्पों को लिंग के आधार पर मुख्यत: नर, मादा व उभयलिंगी प्रकार में बांटा गया है। पपीते की उन्नत खेती करने के लिए अच्छे तथा स्वस्थ बीजों का प्रयोग बहुत जरूरी होता है।

भूमि एवं जलवायु

पपीते की सफल बागवानी हेतु गहरी और उपजाऊ, सामान्य पी-एच मान वाली बलुई दोमट मृदा अत्यधिक उपयुक्त मानी गयी है। इसकी बागवानी के लिए भूमि में जल निकास का होना बहुत जरूरी है, क्योंकि यह जल भराव के प्रति काफी सुग्राह्य है। पपीता एक उष्ण कटिबंधीय फल है, किन्तु इसकी खेती बिहार की समशीतोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक की जा रही है। इसकी बागवानी समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊंचाई तक की जा सकती है। वायुमण्डल का तापमान 10^0 सेल्सियस से कम होने पर पपीते की वृद्धि, फलों का लगना तथा फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पपीते की अच्छी वृद्धि के लिए 22^0 से 26^0 सेल्सियस तापमान उपयुक्त पाया गया है। इसके लिए औसत वार्षिक वर्षा 1200-1500 मि.मी. पर्याप्त होती है। पकने के समय शुष्क एवं गर्म मौसम होने से पपीता के फलों की मिठास बढ़ जाती है।

पपीता की उन्नत प्रजातियां

पपीता एक परपरागण वाली फसल है तथा इसका व्यावसायिक प्रवर्धन बीज के द्वारा होने के कारण एक ही प्रजाति में बहुत अधिक भिन्नता पायी जाती है। वर्तमान में भारत में पपीते की कई किस्में विभिन्न प्रदेशों में उगायी जा रही हैं। इनमें प्रमुख रूप से 20 उन्नत किस्में हैं तथा कुछ स्थानीय व विदेशी किस्में हैं। स्थानीय किस्मों में रांची, बारवानी तथा मधु बिन्दु प्रमुख हैं। विदेशी किस्मों में वाशिंगटन, सोलो, सनराइज सोलो एवं रेड लेडी प्रमुख हैं। पपीते की कुछ प्रमुख किस्मों की संक्षिप्त जानकारी इस लेख में दी जा रही है।

पूसा मैजेस्टी

इस प्रजाति में भी पूसा डेलिशियस की भांति मादा एवं उभयलिंगी पौधे निकलते हैं। यह 50 सें.मी. की ऊंचाई से फल देता है तथा एक फल का वजन 1.0-2.5 कि.ग्रा. तक होता है। पूसा मैजेस्टी पैदावार में उत्तम

*कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ-250110 (उत्तर प्रदेश); **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, लखनऊ-226018 (उत्तर प्रदेश)

पूसा डेलिशियस

यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसमें मादा और उभयलिंगी पौधे निकलते हैं तथा उभयलिंगी पौधे भी फल देते हैं। पूसा डेलिशियस 80 सें.मी. की ऊंचाई तक बढ़ने पर फल देता है। इसके फल अत्यंत स्वादिष्ट एवं सुगंधित होते हैं। फलों का आकार मध्यम से लेकर साधारण बड़ा तक होता है। इनका वजन 1-2 कि.ग्रा. तक होता है। पकने पर फलों के गूदे का रंग गहरा हो जाता है तथा गूदा ठोस होता है। गूदे की मोटाई 4.0 सें.मी. तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10^0 से 13^0 ब्रिक्स होती है। फलों की पैदावार 45 कि.ग्रा. प्रति पेड़ होती है।

पपीते की बहार

है तथा फल में पपेन की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसके फल अधिक टिकाऊ होते हैं तथा इनमें विषाणु रोगों का प्रकोप कम होता है। पकने पर गूदा ठोस एवं पीले रंग का होता है तथा कुल घुलनशील ठोस 9 से 10 ब्रिक्स तक होता है। इस किस्म के एक पेड़ से 40 कि.ग्रा. तक फल प्राप्त होता है। इसके गूदे की मोटाई 3.5 सें.मी. होती है। यह प्रजाति सूत्रकृमि अवरोधी भी है।

पूसा ड्वार्फ

यह एक डायोसियस प्रजाति है और इसमें नर एवं मादा पौधे निकलते हैं। इस किस्म के पौधे बौने होते हैं। इसमें फलन जमीन से 40 सें.मी. की ऊंचाई पर होता है तथा एक फल का वजन 0.5 से 1.5 कि.ग्रा. तक होता है। इसकी पैदावार 40-50 कि.ग्रा. प्रति पेड़ है। फल के पकने पर गूदे का रंग पीला होता है। गूदे की मोटाई 3.5 सें.मी. होती है तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 ब्रिक्स होती है। पौधा बौना होने के कारण इसे आंधी या तूफान से कम नुकसान होता है।

पूसा जायंट

यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। इस किस्म के पौधे विशालकाय होते हैं, जिनमें फलन जमीन से 80 सें.मी. की ऊंचाई परे होता है। पूसा जायंट के फल बड़े होते हैं तथा एक फल का वजन 1.5 से 3.5 कि.ग्रा. तक होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 5 सें.मी. होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 7 ब्रिक्स होती है। प्रति पेड़ औसत उपज 30-35 कि.ग्रा. तक होती है। यह किस्म पेठा और सब्जी बनाने के लिए काफी उपयुक्त है।

पूसा नन्हा

यह पपीते की सबसे बौनी प्रजाति है, जो गामा किरणों द्वारा विकसित की गयी है। पूसा नन्हा भी एक डायोसियस प्रजाति है। यह 30 सें.मी. की ऊंचाई से फलना प्रारंभ करता है। इसमें प्रति पेड़ 25 कि.ग्रा. तक फल प्राप्त होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 3 सें.मी. होती है। पूसा नन्हा में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति सघन बागवानी तथा गृह वाटिका के लिए काफी उपयुक्त पायी गयी है।

कुर्ग हनीड्यू

यह किस्म भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु के केन्द्रीय बागवानी प्रयोग केंद्र, चेट्टाली द्वारा चयनित किस्म है। इसका चयन हनीड्यू नामक प्रजाति से किया गया है। यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं। कुर्ग हनीड्यू के फल लम्बे, अंडाकार आकार एवं मोटे गूदेदार होते हैं। इसके फलों का वजन 1.5 से 2.0 कि.ग्रा. तक होता है। गूदे का रंग पीला होता है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौधा औसत उपज 70 कि.ग्रा. तक होती है।

को.-1

यह प्रजाति 1972 में रांची प्रजाति से चयनित की गयी है। यह एक डायोसियस किस्म है और इसके पौधे छोटे होते हैं। इसके फल मध्यम आकार के गोल होते हैं तथा गूदा पीले रंग का होता है। फलों में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 120 ब्रिक्स तक होती है। प्रति पौधा औसत उपज 40 कि.ग्रा. तक होती है।

को.-2

इस किस्म का चयन 1979 में स्थानीय किस्म से किया गया है। इसमें पपेन प्रचुर मात्रा (4 से 6 ग्राम प्रति फल) में पायी जाती है। इसके फलों का औसत वजन 1.5 से 2.0 कि.ग्रा. तक होता है। फलों में 75 प्रतिशत गूदा होता है ओर इसकी मोटाई 3.8 सें.मी. तथा रंग नारंगी होता है। फलों का आकार बड़ा होता है, जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 11.4 से 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौधा औसत उपज 80-90 फल प्रति वर्ष होती है। पपेन की औसत उपज 250 से 300 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर होती है।

नर्सरी प्रबंधन

पपीते की खेती के लिए पौध तैयार करना ही महत्वपूर्ण कार्य है। खेत में पौधों को 1.8×1.8 मीटर की दूरी पर लगाना हो तो एक हैक्टर में रोपण हेतु 250 से 300 ग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीज बोने के लिए 6''×8'' इंच आकार के पॉलीथीन बैग प्रयोग में लाए जाते हैं। बीजों का उपचार कवकनाशी से करना चाहिए तथा बीजों को 1.0 सें.मी. की गहराई पर पॉलीथीन की थैलियों में बीचों-बीच बोना चाहिए तथा बाद में स्वस्थ पौधे को छोड़कर शेष पौधों को निकाल देना चाहिए। बीज बोने के बाद उनकी समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। पौध 20 से 25 सें.मी. की हो जाने पर रोपण कर देना चाहिए। बीजों को थैलियों में बोने से पहले 200 पी.पी.एम जिब्रेलिक से उपचारित करने के बाद बोने से जमाव की दर बढ़ जाती है तथा पौधों की ऊंचाई में वृद्धि होती है।

सूर्या

यह सनराइज सोलो एवं पिंक फ्लैश स्वीट के संकरण द्वारा विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं और इनका औसत वजन 600-800 ग्राम तक होता है तथा बीज की कैविटी कम होती है। फलों का गूदा गहरे लाल रंग का होता है। इसकी मोटाई 3-3.5 सें.मी. तथा कुल घुलनशील ठोस मात्रा 13.5-15.0 ब्रिक्स होती है। फल की भंडारण क्षमता भी अच्छी है। प्रति पौधा औसत उपज 55-65 कि.ग्रा. तक होती है।

पपीते की बागवानी

को.-3

यह को.-2 एवं सनराइज सोलो के संकरण द्वारा वर्ष 1983 में विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। यह ताजे फल के रूप में खाने हेतु सर्वोत्तम किस्म है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं, जिनका औसत वजन 500 से 800 ग्राम तक होता है। फल में गूदे का रंग लाल होता है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 14.6 ब्रिक्स तक होती है। प्रति पौधा औसत उपज 90 से 120 फल होती है।

को.-4

यह किस्म वर्ष 1983 में को.-1 एवं वाशिंगटन के संकरण से विकसित की गयी है। इसके पौधे के तने तथा पत्तियों के डंठल का रंग बैंगनी होता है। फल मध्यम आकार का होता है और औसत वजन 1.2 से 1.5 कि.ग्रा. तक होता है। फल में गूदे का रंग पीला होता है और कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.2^0 ब्रिक्स होती है। औसत उपज 80 से 90 फल प्रति पौधा होती है।

को.-5

इस प्रजाति का चयन वर्ष 1985 में वाशिंगटन प्रजाति से किया गया है। यह पपेन उत्पादन हेतु सर्वोत्तम पायी गयी है। इसमें प्रति फल 14.45 ग्राम शुष्क पपेन पाया जाता है। पत्तियों के डंठल का रंग गुलाबी होता है। फलों का औसत वजन 1.5 से 2.0 कि.ग्रा. तक होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13^0 ब्रिक्स होती है। दो वर्ष के फसलचक्र में औसत उपज 75-80 फल प्रति पौधा होती है। शुष्क पपेन की औसत उपज 1500-1600 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर होती है, जिसमें 72 प्रतिशत प्रोटीन पायी जाती है।

को.-6

इस प्रजाति का चयन वर्ष 1986 में पूसा जायंट प्रजाति से किया गया है। यह पपेन उत्पादन तथा ताजा खाने के लिए उपयोगी पायी गयी है। इसके पौधे छोटे होते हैं तथा फलों की तुड़ाई पौध रोपण के आठवें माह से शुरू हो जाती है। इसके फलों का औसत वजन 2 कि.ग्रा. तक होता है। फलों के गूदे का रंग पीला होता है और कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.60^0 ब्रिक्स होती है। प्रति पौधा औसत उपज 80-100 फल है। प्रति फल शुष्क पपेन की मात्रा 7.5 से 8.0 ग्राम तक होती है।

को.-7

यह पूसा डेलिशियस, को.-3, सी.पी. -75 एवं कुर्ग हनीड्यू के बहुसंकरण द्वारा वर्ष 1997 में विकसित संकर किस्म है। को.-7 एक गायनोडायोसियस प्रजाति है, जिसमें फल जमीन से 52.2 सें.मी. की ऊंचाई पर लगते हैं। इसके फल लम्बे, अंडाकार होते हैं और गूदे का रंग लाल होता है। फलों में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 16.7^0 ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति 112.7 फल प्रति पौध उपज देती है, जो कि 340.9 टन प्रति हैक्टर है।

बागवानों की आमदनी बढ़ाने में मददगार है पपीता

प्रवर्धन

पपीते का प्रवर्धन मुख्य रूप से बीज

रांची

यह प्रजाति झारखंड की राजधानी रांची के आसपास छोटानागपुर क्षेत्र में पायी जाती है। इसमें नर, मादा तथा उभयलिंगी तीनों प्रकार के पौधे मिलते हैं। इसके फल काफी बड़े होते हैं तथा उभयलिंगी फल का वजन 15 कि.ग्रा. तक पाया गया है। मादा पेड़ से एक फल का वजन 5 से 8 कि.ग्रा. तक पाया गया है, जो दूर से देखने पर कद्दू जैसा दिखाई देता है। इसका बीज बाहर कहीं भी ले जाकर बोने से फल का वजन घट जाता है।

पपीते की बहार

द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा तैयार पौधे कम समय में जल्दी पैदावार देने लगते हैं। इसमें ऐसे बीज का चुनाव करना चाहिए, जोकि स्वस्थ तथा ओजस्वी हों। इसे किसी शोध संस्थान या प्रमाणित बीज भंडार से क्रय करना चाहिए।

बीज की मात्रा: 300-500 ग्राम प्रति हैक्टर।

पौध तैयार करने का समय

साधारणत: पपीते का बीज नर्सरी में रोपने की निर्धारित तिथि से दो महीने पहले बोना चाहिए। इस प्रकार पौधे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के समय करीब 15-20 सें.मी. की ऊंचाई के हो जाते हैं। बिहार में जहां जल जमाव की समस्या है तथा वर्षा के दिनों में विषाणु रोग अधिक तेजी से फैलते हैं वहां अगस्त के अंत में या सितंबर के शुरू में नर्सरी में बीज बोना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

पपीते को बहुत अधिक खाद की आवश्यकता होती है। इस क्षेत्रीय स्टेशन पर किये गये प्रयोगों द्वारा साबित हुआ है कि प्रत्येक फलने वाले पेड़ को 200-250 ग्राम नाइट्रोजन, 200-250 ग्राम फॉस्फोरस तथा 250 से 500 ग्राम पोटाश देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। साधारणत: उपरोक्त खाद तत्वों के लिए यूरिया 450 से 550 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट 1200 से 1500 ग्राम तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश 450-850 ग्राम लेकर उन्हें मिश्रित कर लेना चाहिए। इसके बाद चार भागों में बांटकर प्रत्येक माह के शुरू में जुलाई से अक्टूबर तक पेड़ की छांव के नीचे पौधे से 30 सें.मी. की गोलाई में देकर मृदा में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म तत्व बोरॉन (1 ग्राम प्रति लीटर पानी में) तथा जिंक सल्फेट (5 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव पौध रोपण के चौथे एवं आठवें महीने में करना चाहिए।

सिंचाई

पपीते के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जल प्रबंध बहुत ही आवश्यक है। जब तक पौधा फलन में नहीं आता तब तक हल्की सिंचाई करनी चाहिए, जिससे पौधे जीवित रह सकें। अधिक पानी देने से पौधे काफी लम्बे हो जाते हैं तथा विषाणु रोग का प्रकोप भी ज्यादा होता है। फल लगने से लेकर पकने तक पौधों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। ऐसा देखा गया है कि पानी की कमी के कारण फल झड़ने लगते हैं। गर्मी के दिनों में एक सप्ताह के अंतराल पर तथा जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पपीते में टपक सिंचाई प्रणाली (ड्रिप) के अंतर्गत 8-10 लीटर पानी प्रति दिन देने से पौधे की वृद्धि एवं उपज अच्छी पायी गयी है। इस प्रकार इससे 40-50 प्रतिशत पानी की भी बचत होती है। मृदा नमी को संरक्षित करने के लिए पौधे के तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या काली पॉलीथीन की पलवार बिछानी चाहिए।

फूल तथा फल लगना

पौधे लगाने के लगभग 6 माह बाद मार्च-अप्रैल से पौधों में फूल आने लगते हैं। पपीते में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लिंग नर, मादा एवं उभयलिंगी पाये जाते हैं। नर एवं उभयलिंगी पौधे वातावरण के अनुसार लिंग परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु मादा पौधे स्थायी होते हैं। नर एवं मादा पौधों की पहचान फूल के आधार पर कर सकते हैं। ज्यों ही नर पौधे दिखाई पड़ें उन्हें तुरन्त काटकर खेत से निकाल देना चाहिए। किन्तु परागण हेतु खेत में 10 प्रतिशत नर पौधे अवश्य छोड़ देनी चाहिए।

उपज

पपीते में औसतन प्रति पेड़ 50 से 100 कि.ग्रा. तक उपज प्राप्त होती है। फलों का भार 0.5 कि.ग्रा. से 3.0 कि.ग्रा. तक होता है। पपीते के एक अच्छे बाग से 300 से 350 क्विंटल फल प्रति हैक्टर प्रतिवर्ष प्राप्त होते हैं। प्रति हैक्टर उपज बाग में फल लगने वाले पौधों की संख्या तथा प्रजातियों पर निर्भर करती है।

अमरूद चालीसा

नमो नमो अमरूदफल, नमो दीन जन ईश।
दुखियों के पोषक तुम्हीं, नवा रहा हूं शीश ।
कहते गरीब का सेब इसे, औषधि है उदर विकारों की।
खेती से इतनी आमदनी, आशा है बेरोजगारों की ।1।
खनिजों का ये भरपूर स्रोत, पर्याप्त विटामिन सी भी है ।
गर ललगुदिया हो क्या कहने, पाचक कैंसर रक्षक भी है ।2।
ऊसर बंजर में भी इसकी, खेती होती आसानी से।
उत्पादन जल्दी और प्रचुर, ये डरता नहीं है पानी से ।3।
नाना प्रकार की किस्में हैं, जो जग में जानी श्वेता सरदार इलाहाबादी,
और ललित बखानी जाती हैं ।4।
अब धवल और लालिमा नई, किस्में भी आईं संगत मे।
पहली है गूदेदार श्वेत, दूसरी सेब की रंगत में।।5।
खाने में बीज मुलायम हैं, मीठे सुस्वाद से भरी हुई।
श्वेता और धवल सफेदा, की है मांग इसी से बढ़ी हुई ।6।
पर परिरक्षण के लिए ललित, सर्वोत्तम मानी जाती है।
खट्टा-मीठा सा स्वाद लिए, ललगुदिया भी कहलाती है।7।
वैसे अमरूद लगाते हैं, छह छह मीटर की दूरी पर।
गर सघन बागवानी करनी, तो दूरी इसकी आधी भर ।8।
पौधों की संख्या ज्यादा हो, उत्पादन उससे अधिक मिले।
है यही एक ही लक्ष्य हमारा कृषक समुन्नत खूब फले ।9।
अमरूद वृक्ष एक ऐसा है, इसमें जब चाहो फल पा लो।
गर ठीक तरह से काट-छांट, तकनीक तनिक तुम अपना लो।।10।
बरसाती फल गर ना चाहो, गर्मी में काट-छांट कर दो।
सर्दी में फल होंगे ज्यादा, गुणवत्ता भी उनमें भर दो।।11।
गर फल मक्खी तंग करती हो, उसका इलाज भी सम्भव है।
तुम ट्रैप लगा दो पेड़ों पर, नर मक्खी रहे असम्भव है ।।12।
जब एल्कोहल ईथाइल हो, और यूजिनाल मिथाइल हो।
थोड़ा से पड़े कीटनाशी, नर मक्खी पड़ी शिथाइल हो ।।13।
छहः चारः एक अनुपात मिलें, तो औषधि बड़ी प्रभावी है।
लकड़ी गुटके इसमें डालो, ये नर मक्खी पर हावी है ।।14।
दो दिन के बाद इन्हीं गुटकों, को पेड़ों पर लटकाना है।
बिन दवा छिड़क या खर्चे के, नर मक्खी मार गिराना है ।।15।
छिद्रों से गिरे बुरादा सा, तरु पर सुरंग सी दिखती है।

शाखा पर अमरूद

बाजार के लिए तैयार अमरूद

सूंडी खाती हो छाल, और छिद्रों में छुपकर रहती हो।।16।
इंडरबेला का यूं प्रकोप, है प्रमुख समस्या बागों की।
लापरवाही है प्रमुख वजह, ऐसे बागवां अभागों की ।।17।
पहले सूखती टहनियां हैं, फिर मर जाते तरु बड़े-बड़े।
फल उत्पादन होना मुश्किल, सूखे से दिखते खड़े-खड़े।।18।
जैसे ही दिखें सुरंगें सी, उनको अच्छे से साफ करो।
फिर डालो तीली छिद्रों में, सूंडी को कभी न माफ करो।।19।
फिर डाइक्लोरवॉस कैमिकल, से भिगो रुई का फाहा लो।
छिद्रों में डालो अन्दर तक, फिर बन्द मृदा से कर डालो ।20।
गर मुश्किल हो यह करना तो, छिड़काव पेड़ पर ही कर दो।
गर नुवां रहा दो सौ एमएल, तो सौ लीटर पानी भर दो ।21।
गर कलमी पौध चाहिए तो, फिर सीधा लिखो निदेशक को।
तुम बाग लगाओ जल्दी से, कोई न बीच उपदेशक हो ।22।
गर बाग लगा हो ठीक तरह, बीघा दस टन उत्पादन हो।
बेरोजगारों को रोजगार, कृषकों को धन का साधन हो ।23।
अब चलो पौध सम्बन्धी भी, कुछ बातें और सुनाते है।
उद्यमियों को भी रोजगार के, अवसर आज सुझाते हैं ।24।
जो कलमी पौध बनाते हैं, उनके तो वारे-न्यारे है।
पौधों की मांग इस कदर है, व्यापारी तक भी हारे हैं ।25।
छह महीने का पौधा खरीद, उस पर बांधो तुम वेज कलम।
छह महीने तक कर देखभाल, छह गुना कमाओ कम से कम ।26।
पर सच्चाई गुणवत्ता से, समझौता कभी नहीं करना।
ईमान बेचकर धन अर्जन, से हे भाइयों सदा डरना ।27।
यह चालीसा है अलग, पाठ करे जो कोय ।
लाए जो व्यवहार में, भला उसी का होय ।

रचनाकारः **डा. सुशील कुमार शुक्ल, प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी), भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, काकोरी, लखनऊ-226 101 (उत्तर प्रदेश)**

विशेष

कैंथ है एक पोषक फल

फल विशेषांक

प्रकाश चंद्र त्रिपाठी*

कैंथ *(फेरोनिया लिमोनिया* प्रयायवाची *लिमोनिया एसिडिसिमा)* शुष्क क्षेत्र में पाया जाने वाला एक फल वृक्ष है। इसको विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। कैंथ को बंगला में कठबेल, गुजराती में कोथू, कन्नड़ में बेलेदा, मलयालम और तमिल में विलम पजम, मराठी में कवठ, उड़िया में कैंथा, तेलगु में वेलेगा पंडु, एलागाकाय, हिंदी में कैंथ या कठबेल, संस्कृत में कपित्थ, कुचफल, गंधफल, चिरपाकी, बैशाख नक्षत्री, दधिफल कहते हैं। अंग्रेजी में इसे वुड ऐप्पल अथवा मंकी फ्रूट के नाम से जाना जाता है। भारत में पुरातन समय से इसका प्रयोग किया जा रहा है। प्राचीनकाल में जंगलों में रहने वाले ऋषि-मुनि कैंथ को आहार के रूप में प्रयोग करते थे। मान्यता है कि तपस्या करने गए बालक ध्रुव ने फलाहार के तौर पर इसे लिया था। कैंथ भारतीय मूल का वृक्ष है। शुष्क क्षेत्रों में इसके वृक्ष आसानी से देखे जा सकते हैं। कैंथ के वृक्ष सम्पूर्ण भारत में पाये जाते हैं, लेकिन पश्चिमी भारत, मध्य भारत और दक्षिण भारत के शुष्क पहाड़ी/पठारी क्षेत्रों में ये बहुतायत में पाये जाते हैं। आबादी वाले इलाकों में इनकी संख्या कम होती जा रही है। भारत के अतिरिक्त कैंथ श्रीलंका, दक्षिणी एशिया और जावा में भी पाया जाता है।

कैंथ एक अत्यंत पौष्टिक फल है। इसके पके हुए गूदे का स्वाद खट्टा-मीठा होता है और बीज गूदे से ही लगे होते हैं। पौष्टिकता के साथ-साथ औषधीय दृष्टि से भी यह बहुत अधिक लाभकारी है। कैंथ में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें विटामिन 'सी', रेशा, लौह तत्व, कैल्शियम, फॉस्फोरस, जस्ता, विटामिन बी$_1$, विटामिन बी$_2$, विटामिन बी$_3$, फाइटोकैमिकल्स, एल्केलोइड, पॉलीफिनोल आदि तत्व पाए जाते हैं (सारणी-1)। कैंथ का 100 ग्राम गूदा विटामिन बी$_3$ और जस्ता की दैनिक आवश्यकता को पूरा कर सकता है। इससे तरह-तरह के खाद्य उत्पाद जैसे-जैम, जेली, शरबत, चॉकलेट और चटनी आदि तैयार किये जाते हैं। इसका गूदा शरबत बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। इसकी चटनी भी खूब पसंद की जाती है। दक्षिण भारत में कैंथ के गूदे को गुड़, मिश्री और नारियल के दूध के साथ मिलाकर खाया जाता है। कर्नाटक के कई भागों में रामनवमी के दिनों में इसका शरबत पिलाने का प्रचलन है। आयुर्वेद में कैंथ को पेट के रोगों का विशेषज्ञ माना गया है। आयुर्वेदिक चिकित्सक इसके गूदे को तरोताजगी प्रदान करने वाला मानते हैं। कच्चे कैंथ में एस्ट्रीजेंट्स होते हैं। ये मानव शरीर के लिए बहुत फायदेमंद साबित होते हैं। यह पेचिश के मरीजों के इलाज में उपयुक्त माना जाता है। इससे मसूड़ों तथा गले के रोग भी ठीक होते हैं। कैंथ के वृक्ष से गोंद निकलती है। यह गुणवत्ता में बबूल की गोंद के समकक्ष होती है। इसके पत्तों से निकाले गए तेल का इस्तेमाल खुजली के उपचार सहित अन्य कई प्रकार के रोगों के इलाज के लिए औषधि के तौर पर सदियों से किया जाता रहा है। कैंथ के वृक्ष की लकड़ी हल्की भूरी, कठोर और टिकाऊ होती है, इसलिए इसका इस्तेमाल इमारती लकड़ी के तौर पर भी किया जाता है।

जलवायु और मृदा

कैंथ मुख्यतः उष्ण जलवायु का वृक्ष है। ठंडे तथा अधिक ऊंचाई वाले इलाकों के अलावा, इसके वृक्ष सामान्यतः सभी स्थानों पर देखने को मिलते हैं। खासतौर पर यह शुष्क स्थानों पर उगने वाले फल वृक्ष है। ये 23 से 35^0 सेल्सियस तक के तापमान पर आसानी से बढ़ सकते हैं। कैंथ लगभग सभी तरह की मृदा में लगाया जा सकता है। सूखे क्षेत्रों में यह आसानीपूर्वक बढ़ जाता है। पौधे के संभल जाने के बाद इसे देखभाल की बहुत कम जरूरत पड़ती है।

प्रवर्धन

कैंथ को बीज तथा कायिक विधियों से प्रवर्धित किया जा सकता है। इसके बीज छोटे तथा भूरे रंग के होते हैं। बीजों में

*प्रधान वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, पादप आनुवंशिकी संसाधन विभाग, भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु (कर्नाटक)

चटनी

कैंथ की चटनी एक लोकप्रिय व्यंजन है। इसे बनाने के लिये कैंथ को तोड़कर उसके गूदे को निकाल लें। फिर गूदे में से बीज को अलग कर दें। इसके बाद एक बर्तन में तेल डालकर धीमी आंच पर रखें। तेल के गर्म होते ही इसमें सरसों के दाने डालें। जैसे ही सरसों के दाने चटकने लगें, इसमें मेथी दाना, हींग, सूखी लाल मिर्च और हरी मिर्च मिलाकर भून लें। अब इन मसालों को स्टोव से उतारकर ठंडा होने दें। इसके बाद मसाले को पीसकर इसका पाउडर बना लें। अब इसमें कैंथ का गूदा और नमक मिलाएं और दोबारा दरदरा पीस लें। इसे रोटी या परांठे के साथ खाया जा सकता है

कैंथ के फलों में विभिन्नता

सुषुप्तता नहीं होती है और ताजे बीजों का अंकुरण अधिक होता है। बीज बुआई के 15-20 दिनों के अंदर उग जाते हैं। अच्छे अंकुरण के लिये पके फलों से बीज तुरंत निकाल लेने चाहिये। सड़े तथा फफूंदीग्रस्त गूदे से प्राप्त बीज कम उगते हैं। कैंथ के पौधे तैयार करने के लिये अधिकाशत: बीजों का प्रयोग किया जाता है। इसके पौधे बहुत धीरे बढ़ते हैं। बीजों से तैयार पौधे समान नहीं होते हैं और ये काफी समय बाद फल देना आरंभ करते हैं। कैंथ के पौधे तैयार करने के लिये कायिक विधियों का अब तक मानकीकरण नहीं हो पाया है, हालांकि सॉफ्ट ग्रॉफ्टिंग से सफलता मिलने की कुछ अनुसंधान रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं। इसलिए अधिकांश तौर पर बीजू पौधों का ही प्रयोग किया जाता है।

कैंथ का पेड़

रोपण

कैंथ के वृक्षों को अच्छी धूप की जरूरत होती है, इसलिए इन्हें छायादार क्षेत्रों में नहीं लगाना चाहिये। पौधों को लगाने की दूरी, भूमि के ढलान तथा प्रकार पर निर्भर करती है। सामान्यत: पौधों को 8 × 8 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। इनको लगाने के लिए 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे बनाये जाते हैं। इन गड्ढों को मिट्टी, गोबर की खाद तथा 100 ग्राम नाइट्रोजन : फॉस्फोरस : पोटाश के मिश्रण से भरा जाता है। एक से 2 वर्ष की आयु के 1-2 फीट ऊंचे पौधे लगाने के लिए उपयुक्त होते हैं। पौधों को बरसात के महीनों में लगाया जाता है।

खाद एवं उर्वरक

कैंथ, धीमी गति से बढ़ने वाला पौधा है। इसके पौधे अनुपजाऊ जमीन में भी अच्छी वृद्धि करते हैं। कैंथ के पौधों की पोषण आवश्यकताओं का अब तक मानकीकरण नहीं हो पाया है। इसलिए खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग नगण्य है।

सधाई और छंटाई

कैंथ के पौधों में प्रारंभिक अवस्था से बहुत सी शाखायें बनती हैं तथा पौधे झाड़ीनुमा हो जाते हैं। इसलिए पहले 2-3 वर्षों में पौधों की समुचित सधाई आवश्यक है। इसके लिए मुख्य तने से 4 फीट की ऊंचाई तक कोई शाखा नहीं रखनी चाहिए। चार फीट के बाद शाखाओं को इस तरह व्यवस्थित करना चाहिए कि वे एक छत्र सा बना सकें। इससे बाद के वर्षों में अधिक उपज प्राप्त होती है और कर्षण कार्यों में सुविधा होती है। एक बार पौधे का ढांचा विकसित होने के बाद प्रतिवर्ष रोगग्रसित, सूखी तथा आड़ी-टेढ़ी बढ़ने वाली शाखाओं की छंटाई करते रहना चाहिए।

सिंचाई एवं खरपतवार नियंत्रण

कैंथ की जड़ें जमीन में गहराई तक जाती हैं इसलिए पौधे सूखा सहन कर सकते हैं और पौधों को सिंचाई की जरूरत नहीं होती है। इसके पौधों को प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार

कैंथ-एक परिचय

कैंथ के वृक्ष पर्णपाती होते हैं। इसके वृक्ष मध्यम से बड़े आकार के होते हैं। ये 8-10 मीटर की ऊंचाई तक बढ़ सकते हैं। इसका तना खुरदरा होता है। शाखायें कांटेदार होती हैं। पत्तियां संयुक्त होती हैं। इनमें 5-7 पत्रक होते हैं। कैंथ के फूल छोटे तथा सफेद रंग के होते हैं। इसके फल गोल, 100 से 300 ग्राम वजन, धूसर भूरे रंग तथा कठोर आवरण वाले होते हैं। फलों का गूदा गहरे क्रीमी रंग से लेकर चॉकलेटी रंग का होता है। यह खट्टा-मीठा होता है तथा इसमें बहुत से छोटे-छोटे बीज होते हैं। कैंथ एक सहिष्णु वृक्ष है। इसे समुद्र की सतह से 900 मीटर ऊंचाई पर उगता देखा जा सकता है। भारत में यह राजस्थान, मध्य प्रदेश, मध्य महाराष्ट्र, विदर्भ, उत्तर व मध्य कर्नाटक, गुजरात, मध्य तमिलनाडु में उगाया जाता है। इसकी व्यावसायिक खेती नगण्य है। इसके वृक्ष बंजर भूमि, खेतों की मेड़, जंगल और खाली भूमि में उगते हैं। इन्हीं वृक्षों से फल तोड़कर इस्तेमाल किये जाते हैं तथा बाजार में बेचे जाते हैं।

नियंत्रण की आवश्यकता होती है। इसलिए इस अवस्था में लगातार खरपतवार निकाले जाने चाहिये। पौधों की पूर्ण वृद्धि के बाद लता वाले खरपतवारों का नियंत्रण बेहद जरूरी है। अन्यथा ये पौधों के ऊपर आच्छादित होकर पौधों की वृद्धि तथा फलन को प्रभावित करते हैं।

पुष्पन, फलन एवं उपज

पौध रोपण के 10 से 15 वर्षों बाद फलत आरंभ होती है। दक्षिण भारत की दशाओं में पुष्पन मार्च-अप्रैल में होता है। इसके पुष्प छोटे 1.5-2.0 सें.मी. लंबे तथा आकर्षक सफेद रंग के होते हैं। पुष्प सुबह के समय खिलते हैं तथा परागण मधुमक्खियों तथा अन्य कीटों द्वारा होता है। फूल आने के 10 से 12 महीने में फल तैयार हो जाते हैं। फल प्रारंभ में हरे होते हैं तथा परिपक्वता आने पर काले धूसर रंग के हो जाते हैं। दक्षिण भारत की दशाओं में फल दिसंबर से जून में परिपक्व होते हैं। फलों का भार 100 से 300 ग्राम तक होता है। एक वयस्क पौधे से 400 से 500 फल (40-50 कि.ग्रा.) प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके फलों की बाजार में अच्छी मांग है।

रोग एवं कीट नियंत्रण

कैंथ के वृक्षों में रोग तथा कीटों का अधिक प्रकोप नहीं देखा गया है। दीमक इसके पौधों को नुकसान पहुंचाते देखे गए हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में फल तथा तना सड़न की समस्या देखी गयी है। भंडारण के दौरान फलों का गूदा काली फफूंदी से प्रभावित होता है। इससे फल बाहर से अच्छे दिखते हैं परंतु अंदर से खराब हो जाते हैं। इसलिए फलों को अधिक दिनों तक भंडारित नहीं किया जा सकता है।

किस्में

कैंथ की कोई व्यावसायिक किस्म नहीं है। मध्य भारत और दक्षिण भारत में इसके विभिन्न आकार तथा वजन के फल मिलते हैं। मोनोजेनिक प्रजाति होने के कारण इसमें नीबू परिवार के अन्य सदस्यों की तुलना में कम विविधता है। कैंथ की उपलब्ध विविधताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में छोटे आकार के फल होते हैं, जो स्वाद में बहुत खट्टे होते हैं साथ ही गले पर भी असर करते हैं। दूसरे वर्ग में वे फल हैं, जो आकार में बड़े होते हैं। इनका गूदा खट्टापन लिए मीठा होता है। इनमें बड़े आकार के तथा चाकलेट रंग के गूदे वाली स्थानीय किस्में अधिक पसंद की जाती हैं। भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु पर संग्रहित कैंथ संकलनों में कुछ संकलन उन्नत पाये गये हैं। इन संकलनों के फल बड़े आकार के तथा इनका गूदा खट्टा-मीठा तथा चॉकलेटी रंग का होता है। ये संकलन नियमित तथा अधिक उपज देते हैं।

सारणी 1. कैंथ फल का पोषक मान

पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग)	पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग)
जल	63-65 ग्राम	राइबोफ्लेविन	17 मि.ग्रा.
शर्करा	18.1 ग्राम	नियासिन	8 मि.ग्रा.
प्रोटीन	7.1 ग्राम	कैल्शियम	130 मि.ग्रा.
वसा	3.7 ग्राम	लौह	6 मि.ग्रा.
रेशा	5 ग्राम	मैग्नीज	18 मि.ग्रा.
विटामिन सी	8-9 मि.ग्रा.	जस्ता	10 मि.ग्रा.
थाइमीन	0.04 मि.ग्रा.		

फलों का उपयोग

कैंथ का फल खट्टा-मीठा होता है। इसलिए आमतौर से इसे ताजे फल के तौर पर नहीं खाया जाता है। यह खनिज पदार्थों तथा विटामिन $बी_{12}$ का अच्छा स्रोत है। इसलिए इसके द्वारा कई पौष्टिक खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं। भारत में कैंथ द्वारा तैयार खाद्य पदार्थों को अच्छा और पौष्टिक माना जाता है। इसके गूदे को गुड़ के साथ मिलाकर खाया जाता है। कैंथ द्वारा तरह-तरह के खाद्य पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं जैसे-जैम, जेली, शर्बत, चॉकलेट, चटनी आदि।

जेली

कैंथ की जेली मीठी व थोड़ा कसैलापन लिए होती है, जो इसके पेक्टिन से तैयार की जाती है। इसका स्वाद मीठा हल्का खट्टा होता है। इसे बनाने के लिये पूर्णतः पके हुए फलों का चयन करते हैं। फलों का वजन करके साफ पानी से धोकर गूदा निकाल लें। गूदे में पानी को मिलाकर अच्छी तरह मिलाना चाहिये। फिर इसे पकाने के लिये रखते हैं। इसे तब तक पकाते हैं जब तक गूदा नरम नहीं हो जाता है। फिर इसे पतले कपड़े से छान लें तथा छनित पेक्टिन को अलग कर लें। कैंथ के पानी को गर्म करना चाहिये। जब पानी उबलना शुरू हो जाए तो इसमें चीनी (750 ग्राम/1 कि.ग्रा.) मिला दें व चम्मच चलाते रहे। इसके बाद इसमें पेक्टिन तथा सिट्रिक अम्ल (1 ग्राम) मिला दें व लगातार चलाते रहें। तैयार होने पर रेफ्क्टो मीटर की सहायता से उबलती हुई जेली में कुल विलेय ठोस पदार्थ ज्ञात कर लिया जाता है। पकने के बाद जेली को समतल पात्र या डब्बे में डाल दें व जमने के लिए छोड़ दें। जमने के बाद आवश्यक आकार में काट सकते हैं व पैकेट्स में रख सकते हैं।

कैंथ हमारे देश का एक प्राचीन फल है। इस पर अधिक अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है। सूखे के प्रति सहनशीलता तथा पोषक गुणों के कारण, भविष्य में यह फसल विविधीकरण तथा जलवायु परिवर्तन की दशाओं में एक महत्वपूर्ण फसल बन सकती है।

शर्बत

कैंथ का शर्बत मीठा व थोड़ा कसैला होता है। यह शीतलता देता है। इसे बनाने के लिये पूर्णतः पके हुए फलों का चयन करें। फलों का वजन करके साफ पानी से धोकर तोड़ लें व गूदा निकाल लें। गूदे को अच्छी तरह कुचलकर गुड़ या चीनी मिलानी चाहिये। फिर इसे मसलिन कपड़े से छान लें। इस छने रस को स्वाद के अनुसार पानी मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। इसमें स्वाद के अनुसार काला नमक तथा इलायची का पाउडर मिलाया जा सकता है

बागवानी फसलों के अधिक उत्पादन में कीटों का महत्व

फल विशेषांक

सचिन सु. सुरोशे*, भाग्यश्री एस. एन.*, स्वीटी कुमारी*, सुभाष चंद्र*, शशांक पी.आर.* और पी. के. सिह**

अच्छे आकार और उच्च गुणवत्ता के फलों के लिए फूलों का सही जगह एवं सही समय पर सही तरीके से परागण होना चाहिए। परागण से सिर्फ अच्छे फलों और अच्छे बीजों की ही प्राप्ति नहीं होती, बल्कि इसके साथ-साथ प्राप्त होने वाली बेहतर गुणवत्ता वाली पैदावार अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अच्छे दामों पर आसानी से बिक जाती है। अगर एक सेब, मधुमक्खियों के द्वारा परागित होता है तो उसमें 10 बीजों का विकास भी होगा। इस प्रकार इन 10 बीजों के साथ पूरी तरह से निषेचित सेब का आकार अच्छा होगा और इसे निर्यात के लिए आसानी से भेजा जा सकता है। इसी तरह, स्ट्रॉबेरी को पूर्णरूप से विकसित होने के लिए मधुमक्खियों को लगभग 21 बार परागण के लिए आना-जाना पड़ता है।

पुष्प के नर भाग (पुंकेसर) से परागकण स्थानांतरित होकर पुष्प के मादा भाग (स्त्रीकेसर) तक जाता है। इस क्रिया को परागण कहते हैं। यह फलों के उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। आमतौर पर उगाये जाने वाले कई प्रकार के ऐसे फल हैं, जिन्हें बाजार में बिक्री योग्य बनाने के लिए परागण की आवश्यकता होती है वरना पर्याप्त परागण के अभाव में हजारों फूल लगने के बावजूद भी या तो फल छोटे रह जाते हैं या फिर फल ही नहीं लगते।

परागण दो तरह से होता है-जैविक और अजैविक। अजैविक परागण हवा द्वारा पूर्ण होता है। इसमें किसी भी जीव की भागीदारी नहीं होती। जैविक परागण जीव-जंतुओं द्वारा परागकण के स्थानांतरण से होता है। यह परागण का सबसे सामान्य रूप है और इसके द्वारा सभी फूलों वाले तीन चौथाई पौधों को परागित किया जाता है। देखा जाये तो 95 प्रतिशत से अधिक फूलों में परागण कीटों द्वारा, विशेष तौर पर मधुमक्खियों द्वारा, किया जाता है।

मधुमक्खियां हैं महत्वपूर्ण फसल परागक

मधुमक्खियों की प्रभावशीलता उनकी अधिक संख्या, सामाजिक जीवनशैली और विभिन्न फूलों की व्यापक विविधता को परागित करने की क्षमता के कारण है। एक कॉलोनी में 20-80 हजार मधुमक्खियां हो सकती हैं और वे आमतौर पर पराग और नैक्टर इकट्ठा करते समय 2 कि.मी. की दूरी पर स्थित फूलों तक जा सकती हैं। अगर तब भी इन्हें भोजन यानी पराग और नैक्टर नहीं मिल रहा तो ये 8 कि.मी. तक भी उड़ सकती हैं। एक सामान्य एपिस मेलिफेरा मधुमक्खी कॉलोनी एक वर्ष में

*कीट विज्ञान संभाग एवं **सी.पी.सी.टी., भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

सारणी 1. भारतीय फसलों के परागण का मौद्रिक मूल्य

क्र.सं.	फसलें	आर्थिक मूल्य (रुपये)	आर्थिक मूल्य (प्रतिशत)
1	तोरिया और सरसों	19355 करोड़	--
2	तिलहन	43993 करोड़	34
3.	फल	17095 करोड़	14
4.	सब्जियां	19498 करोड़	11
5.	फाइबर (मुख्य रूप से कपास)	17290 करोड़	23
6.	मसाले	10109 करोड़	25

सारणी 2. फसलों में परागण के लिए लकड़ी के डब्बों की संख्या

क्र. सं.	फसलें	डब्बों की संख्या प्रति हैक्टर
फल फसलें		
1.	सेब	4
2.	बादाम	12
3.	खुबानी	2
4.	एवोकैडो	5
5.	ब्लैकबेरी	7
6.	ब्लूबेरी	8
7.	साइट्रस	2
8.	कीवीफल	8
9.	मंदारिन	4
10.	आम	15
11.	तरबूज	5
12.	आड़ू और अमृत	2
13.	नाशपाती	4
14.	स्ट्रॉबेरी	8
सब्जी फसलें		
15.	बीन	3
16.	गोभी	5
17.	ब्रैसिका (कैनोला, तिलहन)	5
18.	गाजर बीज	8
19.	ककड़ी	7
20.	एगप्लांट	3
21.	लौकी	4
22.	तरबूज	7
23.	प्याज का बीज	17
24.	कद्दू, स्क्वैश, लौकी	4

*कॉलोनियों की संख्या *एपिस मेलीफेरा* की कॉलोनियों को संदर्भित करती हैं। इसके साथ ही मधुमक्खियों का फसल के प्रति आकर्षण, उनकी संख्या, स्थान, खरपतवार, मौसम और उत्पादनकर्ता के अनुभव के आधार पर प्रति हैक्टर लकड़ी के बने डब्बों की संख्या सुनिश्चित की जाती है। आमतौर पर अगर किसी भी कारण से परागण क्षमता प्रभावित होती है तो इसकी क्षतिपूर्ति के लिए अधिक से अधिक कॉलोनियों को लगाना पड़ता है।

4 लाख उड़ानें भर सकती है। यही नहीं प्रत्येक उड़ान में कम से कम 100 फूलों का दौरा कर सकती हैं। मधुमक्खियों के परागण की प्रभावशीलता किसी फूल की एक ही प्रजाति पर स्थिरता की वजह से और भी बढ़ जाती है। स्काउट मधुमक्खियां कॉलोनी में उपस्थित दूसरी मधुमक्खियों से संवाद करती हैं कि किस फूल का दौरा उन्हें करना है। यहां तक कि उन्हें उस व्यक्तिगत फूल की सुगंध और नैक्टर का स्वाद भी उपलब्ध करवाती हैं। यह स्वाद शेष मधुमक्खियों को स्काउटिंग में लाभ प्रदान करता है।

परागण का आर्थिक मूल्य

पश्चिमी यूरोप में मधुमक्खी परागण का मूल्य उस क्षेत्र में शहद और मोम के उत्पादन मूल्य का 30-50 गुना माना जाता है। अफ्रीका में, मधुमक्खी परागण का अनुमान कभी-कभी शहद के उत्पादन मूल्य से 100 गुना अधिक होता है। यह वहां के फसल के प्रकार पर निर्भर करता है। दुनियाभर में परागण का आर्थिक मूल्य 90 अरब अमेरिकन डॉलर से भी अधिक हो सकता है। भारतीय फसलों के परागण का मौद्रिक मूल्य सारणी-1 में दिया गया है।

किसानों के लिए एक सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी फसलों का अच्छा परागण सुनिश्चित करने के लिए कब और कितनी कॉलोनियों की आवश्यकता होती है? लेकिन यह अत्यंत ही व्यक्तिपरक प्रश्न है क्योंकि परागण से सम्बंधित अध्ययन बहुत ही संकीर्ण हैं और इनकी पारिस्थितिक तंत्र सेवाएं भी सुचारु रूप से स्थापित नहीं हैं। इसके साथ ही अन्य विषम कारक जैसे-फूलों के खिलने की अवधि, खिले हुए फूलों का घनत्व, उनका आकर्षण, बनावट एवं मौसम, यह निर्धारित करते हैं कि मधुमक्खियां कितने अच्छे तरीके से किसी फसल को परागित करेंगी। यह मात्रात्मक रूप से मापना बहुत ही मुश्किल है। लकड़ी के बने डब्बों की संख्या किसी व्यक्तिगत कॉलोनी की गुणवत्ता और कार्य-शक्ति पर निर्भर करती है। कुछ महत्वपूर्ण फसलों में परागण के लिए प्रति हैक्टर लकड़ी के बने डब्बों की औसत संख्या सारणी-2 में दी गई है।

मधुमक्खियों की कॉलोनियां लगाने का समय

यह सबसे अच्छी और महत्वपूर्ण बात है कि जब कोई फसल परागण के लिए तैयार हो जाती है तो उस समय लकड़ी के बने डब्बों को उस तैयार फसल तक लाया जा सकता है। जब फसल में 5-10 प्रतिशत तक फूल लग जाते हैं तब ही इनको वहां लाना चाहिए। अगर इनको पहले लाकर रख दिया जाता है तो, हो सकता है कि मधुमक्खियां पराग और नैक्टर की तलाश में अन्य पौधों पर जा सकती हैं। मधुमक्खियां बहुत ही वफादार होती हैं, जब एक बार ये अन्य पौधों के फूलों से अपना भोजन लेना शुरू कर देती हैं तो जब तक उन फूलों से भोजन मिलना कम या बंद नहीं हो जाता, ये वापस नहीं आती हैं। ऐसे हालात में उत्पादनकर्ता को चाहिए कि वह मधुमक्खियों को आकर्षित करने वाले रासायनिक पदार्थों का छिड़काव करें जैसे कि रानी मधुमक्खी के कृत्रिम फेरोमोन अथवा नेसोनाव फेरोमोन के घटक।

परागण के लाभ

कीट परागण एक सहजीवी प्रक्रिया है, जो कीट और पौधे दोनों के लिए लाभप्रद होती है। कीट, पौधों को परागण प्रदान करते हैं और पौधे उन्हें भोजन मुख्यतौर पर नैक्टर तथा पराग के रूप में प्रदान करते हैं। नैक्टर शर्करा का मिश्रण है, जिसमें अन्य खनिज पोषक तत्व और सुगंध मिश्रित हैं। यह आमतौर पर फूल के निचले सतह पर स्थित होता है। पराग प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थ है, जो कई परागणकर्ताओं के लिए खाद्य स्रोत है।

मधुमक्खियों द्वारा परागण

छत्तीसगढ़ में अंगूर उत्पादन

पी.सी. चौरसिया*

फल विशेषांक

छत्तीसगढ़ के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र में इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय के अंतर्गत आलू एवं समशीतोष्ण फल अनुसंधान केन्द्र, मैनपाट में अंगूर की विभिन्न प्रजातियों का परीक्षण किया गया है। इनका परिणाम काफी उत्साहजनक रहा। अंगूर की प्रजातियां जैसे-परलेट, फ्लेम सीडलेस एवं पंजाब पर्पल के नतीजे भी अच्छे देखे गए। पौध रोपण के दो वर्ष बाद ही इन प्रजातियों में अच्छी फलन पाई गई। वर्ष 2017-18 एवं 2018-19 के परिणामों के आधार पर इन प्रजातियों को उत्पादन के लिए बढ़ावा दिया जा सकता है।

अंगूर की गिनती भारत के सर्वश्रेष्ठ फलों में की जाती है। यह बहुत ही स्वादिष्ट एवं आनन्ददायक फल होता है और इसकी प्रशंसा विश्वभर में की जाती है। अंगूर की खेती शराब बनाने, ताजा खाने एवं सुखाकर किशमिश बनाने के उद्देश्यों के लिए की जाती है। इसके फल का प्रयोग ताजे रूप में खाने के अतिरिक्त किशमिश, परिरक्षित रस, वाइन, जैली तथा सिरका के रूप में भी किया जाता है। हमारे यहां किशमिश की अधिक मांग रहती है।

जलवायु

अंगूर उपोष्ण जलवायु का फल है और यह गर्म, सूखा गर्म, सूखी गर्मी का मौसम एवं ठंडा तथा वर्षायुक्त सर्दी का मौसम चाहता है। इस फसल की कुछ तकनीकियों में परिवर्तन करके इसको शीतोष्ण जलवायु में भी सफलतापूर्वक लगाया जा रहा है। ऐसी जलवायु में अधिक सर्दी में यह पत्तियां गिराकर सुषुप्तावस्था में रहता है तथा बसन्त ऋतु आगमन पर इसमें नई वृद्धि एवं फलन होती है। इसका फल गर्मियों में पकता है, जब वर्षा नहीं होती है।

मृदा

अंगूर विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जाता है। साधारण मृदा जिसमें फसलों को उगाया जा सकता है, इसके लिये भी उपयुक्त होती है। अंगूर की खेती के लिए मृदा अच्छे जल निकास वाली होनी चाहिये। कमजोर एवं बलुई मृदा में यदि खाद तथा सिंचाई पर्याप्त मात्रा में दी जाती है तो वह उतनी ही उपयुक्त होती है, जितनी कि दोमट मृदा। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां कम पी-एच मान वाली मृदा हो, वहां पर सूखा बुझा चूना डालना चाहिए।

*सहायक प्राध्यापक (उद्यानिकी), इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, महासमुंद (छत्तीसगढ़)

अंगूर-फ्लेम सीडलेस

किस्में

खाने वाली किस्में

आलू एवं समशीतोष्ण फल अनुसंधान केंद्र, मैनपाट में अंगूर की विभिन्न प्रजातियों जैसे परलेट, फ्लेम सीडलेस एवं पंजाब पर्पल का मूल्यांकन किया गया है, जिसका परिणाम काफी अच्छा है।

अंगूर-परलेट

भूमि की तैयारी और बुआई रूपरेखा

साधारणतः कतार का उत्तर-दक्षिण की दिशा में Y तथा T ट्रेलिज में चयन किया जाता है। इसमें गार्डन की भी दिशा एक होती है, लेकिन पंडाल (मंडप) पद्धति में पूरब-पश्चिम दिशा का चुनाव किया जाता है। बगीचे में कार्य की आसानी के लिए कतार की लंबाई 200 फीट से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

ट्रेलिसेस लगाना

अंगूर की लता को चढ़ाने के लिए किस ट्रेलिस पद्धति का चयन करना है, यह अंगूर की किस्म, स्थान का वातावरण, मशीनों का प्रयोग, आदि पर निर्भर करता है। Y अथवा T पद्धति नमीयुक्त वातावरण तथा मण्डप पद्धति सूखे वातावरण के लिए उपयुक्त रहती है।

सिंचाई पद्धति

सिंचाई करते समय पानी के एक समान बंटवारा (खड़ा और आड़ा) होने की सुविधा सिंचाई पद्धति में होनी जरूरी है। बहाव सिंचाई की अपेक्षा टपक सिंचाई पद्धति काफी अच्छी होती है।

खाद एवं उर्वरक

अंगूर की लतायें लगभग 2.0 या 2.5 मीटर पर लगाई जाती हैं तथा उनको पंगारा पौधों पर ट्रेन किया जाता है। खाद की पर्याप्त मात्रा वर्ष में एक बार, अप्रैल की छंटाई के बाद दी जाती है। इसमें 25 कि.ग्रा. गोबर की

छंटाई का समय

यह अंगूर की किस्मों की वृद्धि तथा फलन के ऊपर निर्भर करता है। भारत में अंगूर की दो फसलें पैदा की जाती हैं, जिसके लिए छंटाई कार्य भी दो बार अप्रैल तथा अक्टूबर में किया जाता है। अप्रैल में केवल एक कलिका छोड़कर शाखाओं को काट देते हैं, जिसे आधार खूंटी कहते हैं। इससे हुई वृद्धि पर फलन होती है। ऐसे स्थान जहां पर सर्दी अधिक पड़ती है, जैसे-उत्तरी भारत एवं छत्तीसगढ़ के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र, मैनपाट में सर्दी की ऋतु में लतायें सुषुप्तावस्था में रहती हैं। यहां जनवरी के अंत या फरवरी में छंटाई का कार्य किया जाता है, जिससे मई-जून में फलन होती है। छंटाई करने के बाद कटिंग के ऊपर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड फफूंदनाशी के साथ अलसी के तेल का पेस्ट लगाना चाहिए। इससे कीट एवं रोगों का प्रकोप स्वस्थ टहनियों पर नहीं होता है।

पौध संरक्षण

कीट

अंगूर का भृंग: यह पत्तियों में छेद बनाकर नुकसान पहुंचाने वाला छोटा काले रंग का कीट होता है। भृंग कोमल प्ररोहों एवं कलियों को खाकर नष्ट करता है। इन कीटों को किसी प्रकार पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

लीफ रोलर

ये कुछ पीलापन लिये हुये हरे रंग के कीट होते हैं, जो खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। इनको हाथ द्वारा पकड़कर नष्ट किया जा सकता है। इनकी संख्या अधिक होने पर सिस्टमेटिक कीटनाशक का प्रयोग करना चाहिये।

गर्डलिंग भृंग

यह कीट लता की टहनियों पर गर्डिल सा बना लेता है। इससे प्रभावित टहनियां सूखकर नष्ट हो जाती हैं। इन टहनियों को काटकर तथा इकट्ठा कर जला देते हैं। इस प्रकार इनके अंदर उपस्थित भृंग को नष्ट किया जा सकता है।

अंगूर की किस्म पंजाब पर्पल

खाद तथा 500 ग्राम अरंडी की खली दी जाती है। यह मानसून में लकड़ी को कड़ा बनाती है। आमतौर पर जब अक्टूबर से छंटाई की जाती है तो उस पर भारी फलन होती है। इसके साथ ही साथ अमोनियम सल्फेट की मात्रा दो बार में मार्च-अप्रैल (फल बनने के समय) के महीने में दे दी जाती है।

रोपण विधि

पौधे लगाने के बीच का अंतर मृदा, जलवायु, किस्म, छंटाई के तरीके तथा खेती करने के ढंग पर निर्भर करता है। बेल को केन प्रणाली से ट्रेन करते हैं और उनको 3 मीटर के अंतर पर लगाया जाता है। पौधे लगाने से पहले 45 × 45 × 45 सें.मी. आकार के गड्ढे खोदकर खाद तथा मृदा के बराबर मिश्रण से भर देते हैं तथा पौधे लगा देते हैं। उत्तरी भारत में एक वर्ष पुरानी तथा छत्तीसगढ़ के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में बेलों को सर्दी के मौसम के अंत में लगाया जाता है, ताकि वे बढ़कर ठीक स्थिति में हो जायें।

छंटाई की विधियां

अंगूर की पैदावार अधिकांशतः उसकी कटाई-छंटाई की विधि के ऊपर निर्भर करती है। इसकी विभिन्न किस्मों को विभिन्न प्रकार की छंटाई की आवश्यकता होती है। यह उसकी क्षमता एवं फलन पर निर्भर करती है। छंटाई की क्रिया करने से पहले इससे संबंधित निम्नलिखित बातों की जानकारी होनी आवश्यक है जैसे-

- **टहनीः** वर्तमान मौसम में हुई वृद्धि।
- **शाखाः** पिछले मौसम की परिपक्व वृद्धि
- **खूंटीः** छंटाई के बाद शाखा का शेष भाग।
- **फल खूंटीः** ऐसी खूंटी जिसमें वृद्धि के लिए 3-4 कलियां हों।
- **आधार खूंटीः** एक कलिका वाली खूंटी होती है, जिसमें आगामी ऋतु में पैदा होने वाले फलों के लिए टहनियां पैदा होती हैं। यह अप्रैल की छंटाई के बाद का शेष भाग होता है।
- **तनाः** लता का मुख्य भाग जिससे सभी शाखायें पैदा होती हैं

कटाई उपरांत अंगूर

फूल व फलन

अंगूर की लताओं की देखरेख ठीक प्रकार से होने पर दूसरे वर्ष फल प्राप्त होने लगते हैं। अधिकतम फलन तीसरे एवं चौथे वर्ष से मिलनी आरंभ होती है। छत्तीसगढ़ के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र में फूल मध्य मार्च से अप्रैल तक आते हैं तथा पके हुये फल मई-जून में मिलते हैं। देर से पकने वाली किस्में जुलाई तक फल देती हैं।

उपज

अंगूर की पैदावार किस्म विशेष, लता उम्र, छंटाई तथा अन्य कर्षण क्रियाओं पर निर्भर करती है। इसकी किस्म फ्लेम सीडलेस की पैदावार 145 से 330 क्विंटल प्रति हैक्टर तक प्राप्त की जा सकती है।

अंगूर की विभिन्न प्रजातियों के फल

रोग एवं रोकथाम

पाउडरी मिल्ड्यू

यह रोग लगभग सभी स्थानों पर पाया जाता है। यह कवक द्वारा होता है। इसके प्रभाव से प्ररोह, पत्तियां तथा फलों पर सफेद चित्तियां पड़ जाती हैं। प्रभावित फूलों पर फल पैदा नहीं होते हैं तथा रोगग्रसित फलों की वृद्धि रुक जाती है तथा उनमें फटकर सड़न पैदा हो जाती है या फिर प्रभावित फल कड़े एवं खट्टे हो जाते हैं। रोगग्रसित भागों को काटकर गंधक का चूर्ण छिड़कना चाहिये। यह क्रिया दो-तीन बार की जाती है। बोर्डो मिश्रण के छिड़काव से भी इसको काफी हद तक रोका जा सकता है।

कालव्रण

इस रोग के प्रभाव से पौधे के तने, पत्तियों एवं फलों पर भूरे काले धब्बे हो जाते हैं। ये बाद में काफी बड़े दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इस रोग के गहन प्रकोप के कारण पौधों पर फल पैदा नहीं होते हैं। फूल तथा फलन के लिये चूना-गंधक और बोर्डो मिश्रण के दो-तीन छिड़काव करने से इसका प्रभाव समाप्त किया जा सकता है। रोगग्रसित शाखाओं को काटकर जला देना चाहिए।

डाउनी मिल्ड्यू

यह रोग कवक द्वारा पैदा होता है। पत्तियों के अतिरिक्त नई शाखाओं पर फूल तथा छोटे फलों पर भी इसका प्रकोप होता है। इस रोग से प्रभावित पत्तियां सूख जाती हैं, फलों की वृद्धि रुक जाती है तथा गहन प्रभाव पड़ने पर वे नीचे गिर जाते हैं। 2 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव दो-तीन बार करने से इसके प्रभाव को समाप्त किया जा सकता है। प्रभावित भागों को काटकर जला देना उचित होता है।

ऊसर भूमि में फलदार वृक्षों की खेती

श्यामजी मिश्रा*, **यशपाल सिंह***, **विनय कुमार मिश्र*** और **पुल्कित श्रीवास्तव***

10 वर्षों तक किये गये परीक्षणों के बाद यह देखा गया कि ऊसर भूमि में आगर होल तकनीक से सफलतापूर्वक वृक्षारोपण किया जा सकता है। ऐसी भूमि जिनकी मृदा का पी-एच मान 10.2 तक हैं, उनमें आंवला, अमरूद, बेर एवं करौंदा के फलदार वृक्ष सफलतापूर्वक उगाए जा सकते हैं। इसके साथ ही इन वृक्षों के रोपण से ऊसर भूमि को सुधारने में भी सहायता मिलती है। भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ पर किये गये लंबी अवधि के परीक्षणों से यह साबित हुआ है कि ऊसर भूमि में विभिन्न प्रकार की तकनीकें अपनाकर फलदार वृक्षों की सफलतापूर्वक बागवानी की जा सकती है। इस प्रकार अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है।

भारत में प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिनोंदिन कम होता जा रहा है। इसका मुख्य कारण शहरीकरण एवं अन्य विकास कार्यों के लिए कृषि भूमि के प्रयोग में बढ़ोतरी होना है। राष्ट्रीय कृषि आयोग के अनुसार देश में लगभग 40 मिलियन हैक्टर बंजर जमीन पर वन लगाने पर जोर दिया गया है। बंजर जमीनों की श्रेणी में जो भूमि, वन एवं फलदार वृक्ष लगाने के लिये प्रयोग की जा सकती हैं, उनमें ऊसर भूमि का एक बहुत बड़ा हिस्सा आता है। यह भारत में लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर है। इसके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा भूभाग है, जिसमें जमीन से प्राप्त होने वाले सिंचाई जल की गुणवत्ता खराब है। इस प्रकार यह कृषि उत्पादन में एक बड़ी बाधा है। सिंचाई के लिये अच्छा पानी न मिलने से भी फसलों की पैदावार में कमी आती है। इसके साथ ही जंगली वृक्षों एवं फलदार पेड़ों की बढ़वार तथा उनकी उत्पादकता प्रभावित होती है।

भूमि की तैयारी

ऊसर भूमि में फलदार वृक्ष लगाने के लिये इसको समतल करना अति आवश्यक है। इस भूमि की जल सोखने की क्षमता बहुत कम होती है। लंबे समय तक जल जमाव रहता है और यह पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है। ऐसी भूमि में फलदार वृक्ष लगाने से पहले जल निकासी की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है ताकि अतिरिक्त जल को खेत से बाहर निकाला जा सके।

रोपाई विधि

ऊसर भूमि में वृक्षारोपण के लिये रोपाई की विधि सामान्य भूमि की अपेक्षा अलग होती है। लवणों की अधिकता के कारण पौधों की मृत्यु की आशंका बहुत अधिक होती है। ऐसी भूमि के लिये फलदार

*भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय, अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ-226002 (उत्तर प्रदेश)

ट्रैक्टर की सहायता से आसान होल

आर्थिक लाभ

प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह देखा गया कि सर्वाधिक आय आंवला, करौंदा एवं अमरूद से प्राप्त हुई। आय:लागत के अनुपात का आंकलन करने पर यह पाया गया कि सर्वाधिक आय:लागत अनुपात (2.48) आंवला के वृक्षारोपण से प्राप्त हुआ। उसके बाद अमरूद (2.15) एवं करौंदा (1.96) से प्राप्त हुआ, जबकि इमली, अनार एवं जामुन में आय:लागत अनुपात नकारात्मक पाया गया।

फलदार वृक्ष लगाने के लिये ट्रैक्टरचालित आगर होल

सारणी 1. प्रायोगिक क्षेत्र की मृदा के प्रारंभिक गुण

मृदा के गुण	मृदा की गहराई (सें.मी.)				
	0-15	15-30	30-60	60-90	90-120
पी-एच मान	10.2	10.1	10.0	9.9	9.8
विनिमय योग्य सोडियम का प्रतिशत	81	85	81	76	71
कार्बनिक कार्बन प्रतिशत	0.14	0.11	0.10	0.10	0.08
उपलब्ध नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हैक्टर)	43	41	38	32	31
उपलब्ध फॉस्फोरस (कि.ग्रा./हैक्टर)	21	19	18	17	17
उपलब्ध पोटाश (कि.ग्रा./हैक्टर)	230	215	210	205	206

सारणी 2. पौधों की वृद्धि एवं उत्पादकता

फलों की प्रजातियां	उत्तरजीविता (प्रतिशत)	ऊंचाई (मीटर)	मोटाई (सें.मी.)	उत्पादकता (टन/हैक्टर)
अनार	20	3.01	7.30	0.0
अमरूद	100	3.11	11.96	2.0
करौंदा	100	1.90	10.05	2.3
आम	25	2.53	9.86	1.3
इमली	100	5.13	14.12	0.0
जामुन	100	7.87	26.40	0.0
आंवला	100	4.40	13.42	2.47
बेर	100	3.90	13.20	1.85

ऊसर भूमि में वृक्षारोपण

ऊसर भूमि में सफल वृक्षारोपण के लिये यह आवश्यक है कि जहां पौधा लगाया जा रहा है, उस स्थान की जमीन में पौधे की बढ़वार के लिये उचित वातावरण तैयार किया जाये। पौधे की उचित बढ़वार के लिये कंकड़ की परत को तोड़ा जाये। मृदा में पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध करवाए जायें। लवणों के प्रभाव को कम करने के लिये उचित मात्रा में कार्बनिक एवं अकार्बनिक सुधारकों का प्रयोग किया जाये। निश्चित अवधि की स्वस्थ पौध का चुनाव किया जाये ताकि लवणों की अधिकता के कारण पौधों की होने वाली मृत्युदर को कम से कम किया जा सके। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए भाकृअनुप-केन्द्रीय भूमि लवणता अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ पर फलदार वृक्षों की 8 प्रजातियों जैसे-अनार, अमरूद, करौंदा, आम, इमली, जामुन, आंवला एवं बेर को मृदा पी-एच मान 10.2, विनिमय योग्य सोडियम का प्रतिशत 81 एवं कार्बनिक कार्बन 0.14 प्रतिशत वाली भूमि पर लगाया गया। इसे सारणी-1 में दर्शाया गया है।।

सारणी 3. फलदार वृक्षों द्वारा ऊसर मृदा की गुणवत्ता में सुधार

प्रजाति	पी-एच मान	विद्युत चालकता (dS/m)	कार्बनिक कार्बन (प्रतिशत)
अनार	9.7	0.70	0.27
अमरूद	9.3	0.48	0.31
करौंदा	9.4	0.51	0.30
आम	9.6	0.69	0.27
इमली	9.7	0.70	0.27
जामुन	9.6	0.69	0.29
आंवला	9.1	0.53	0.32
बेर	9.4	0.69	0.30

वृक्षों की किस्मों का चुनाव भी सामान्य भूमि की अपेक्षा कठिन होता है। इस प्रकार की भूमि में लवणों की अधिकता के साथ-साथ इनकी निचली सतह पर (लगभग 0.8-1.5 मीटर) कंकड़ की एक परत पाई जाती है। यह पौधों की जड़ों की वृद्धि में एक बहुत बड़े अवरोधक का काम करती है। सफल वृक्षारोपण के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि इस कंकड़ की परत को तोड़ा जाये ताकि पौधों की जड़ों का पर्याप्त विकास हो सके।

पौधों की रोपाई से पूर्व मृदा का परीक्षण किया जाये। इसके लिये जिस खेत में वृक्षारोपण करना हो उसमें 1 हैक्टर क्षेत्रफल में कम से कम 3 स्थानों पर लगभग 1.50 मीटर गहराई तक जमीन को खोदा जाए। इन गड्ढ़ों की विभिन्न सतहों से नमूने लेकर उनका पी-एच मान, विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशत एवं कार्बनिक कार्बन का परीक्षण किया जाये। इसके साथ ही किस गहराई पर कंकड़ की परत है इसका भी आंकलन किया जाये। इन सभी के आधार पर वृक्षारोपण की योजना निर्धारित की जाये।

एक निश्चित अवधि (6-9 माह) की पौध को 45 सें.मी. ऊपर, 20 सें.मी. नीचे, एवं 120 सें.मी. गहरे ट्रैक्टरचालित आगर होल में रोपित किया जाए। इसके निर्धारित भराव मिश्रण, जिसमें 7.5 कि.ग्रा. जिप्सम, 10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 20 कि.ग्रा. नदी की तह में जमी हुई मिट्टी (सिल्ट) एवं 10 ग्राम जिंक सल्फेट को गड्ढे में से निकली हुई मिट्टी हो। सितंबर के प्रथम सप्ताह में पौधे से पौधे की दूरी 5 मीटर एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 4 मीटर पर रोपाई की जानी चाहिए। पौधे की सही स्थापना के लिये रोपाई के तुरंत बाद एक सिंचाई एवं उसके बाद शुरू के तीन माह तक प्रतिमाह एक सिंचाई दी जानी चाहिए, ताकि पौध अच्छी तरह स्थापित हो जाये। इस प्रक्रिया से लगाए गये पौधों की ऊसर भूमि में उनकी वृद्धि, मृत्युदर एवं उत्पादकता तथा फलदार वृक्ष लगाने से होने वाले ऊसर भूमि की गुणवत्ता में सुधार का अध्ययन किया गया।

पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन

10 वर्षों तक किये गये परीक्षणों के बाद पौधों की वृद्धि, उनकी मृत्युदर एवं उत्पादकता के आंकड़े लिये गये। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह देखा गया कि फलदार वृक्षों में आम एवं अनार को छोड़कर अन्य सभी प्रजातियों में मृत्युदर 5 प्रतिशत से कम थी। सर्वाधिक वृद्धि आंवला एवं जामुन के पौधों में पायी गई। जबकि तने की मोटाई आंवला में सर्वाधिक थी। दस वर्षों की अवस्था पर सभी प्रजातियों की उत्पादकता के आंकड़े लिये गये। प्राप्त आंकड़ों में देखा गया कि सर्वाधिक फलों का उत्पादन आंवला, अमरूद, बेर एवं करौंदा में प्राप्त हुआ। अनार, इमली एवं जामुन से फलों का उत्पादन बहुत कम प्राप्त हुआ। प्रयोग में यह भी देखा गया कि ये प्रजातियां ऊसर भूमि में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। जल भराव की अवस्था में उनकी वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ऊसर भूमि में लगाए गए बाग में फलन

ऊसर भूमि में फलदार वृक्ष

वृक्षारोपण का भूमि सुधार पर प्रभाव

ऊसर भूमि में वृक्षारोपण के प्रभाव को जानने के लिये 10 वर्षों बाद मृदा के नमूने लिये गये तो यह देखा गया कि मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में काफी सुधार हुआ है। मृदा में पौधों की जड़ों के प्रवेश करने से भूमि की पारगम्यता बढ़ती है। इस कारण लवणों का निक्षालन बढ़ जाता है। पौधों की पत्तियां लगातार मृदा सतह पर इकट्ठी होती रहती हैं और उनके सड़ने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह देखा गया कि मृदा के पी-एच मान में सर्वाधिक गिरावट आंवला के पौधों में देखी गई, जबकि सबसे कम गिरावट इमली एवं अनार के पौधों के नीचे थी। सर्वाधिक कार्बनिक कार्बन भी आंवला के पौधों के नीचे ही देखा गया। इसकी सबसे कम मात्रा अनार के पौधों में पाई गई क्योंकि अनार के पौधों की संख्या बहुत कम थी। फलदार वृक्षों के मृदा के सुधार पर प्रभाव को सारणी-3 में दिया गया है।

ऊसर भूमि में बागवानी से प्राप्त फल

अमृत फल के रूप में आंवला की उपयोगिता

वी. संगीता*, **प्रेमलता सिंह***, **वी.एस. तोमर***, **सत्यप्रिय***, **वी. लेनिन***, **डी.यू.एम. राव***, **मोनिका वासन***, **सुकल्या बरुआ*** और **एल. मुरली कृष्णन***

आंवला में अनेक प्रकार के गुण पाये जाते हैं। इसमें विटामिन 'सी' सर्वाधिक मात्रा में पायी जाती है। यह हमारे शरीर के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। इससे हमारे पांचल शक्ति और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को मजबूती मिलती है। इसका उपयोग आयुर्वेदिक औषधि के रूप में अधिक मात्रा में किया जाता है। यह हमारे शरीर को तंदुरूस्त रखने में मदद करता है। आंवला इतना लाभकारी होता है कि इसे अमृत फल के नाम से भी जाना जाता है। आंवला खाने से अस्थमा और सांस संबंधी समस्याओं से राहत मिलती है। यह एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होने के कारण हमारे शरीर के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। यह फेफड़ों से विषाक्त पदार्थों के कणों को हटाने में तथा अस्थमा जैसे रोग को भी रोकने में मदद करता है।

हृदय रोग में लाभकारी

आंवला खाने से हृदय मजबूत होता है। ऐसे मरीज को प्रत्येक दिन कम से कम तीन आंवलों का सेवन करना चाहिए। इससे हृदय रोग दूर होते हैं ऐसे रोगी आंवले का मुरब्बा भी खा सकते हैं।

खांसी और बलगम

खांसी आने पर दिन में तीन बार आंवले का मुरब्बा गाय के दूध के साथ खाएं। अगर ज्यादा तेज खांसी आ रही हो तो आंवले को शहद में मिलाकर खाने से खांसी ठीक हो जाती है।

पथरी के लिए

पथरी की शिकायत होने पर सूखे आंवले के चूर्ण को मूली के रस में मिलाकर 40 दिनों तक सेवन करने पर पथरी समाप्त हो होने का दावा किया जाता है।।

पोषक तत्वों की भरमार आंवला में

नकसीर के लिए

यदि नाक से खून निकलता है या नकसीर है तो आंवले को बारीक पीसकर बकरी के दूध में मिलाकर सिर और मस्तिष्क पर लेप लगाने से नाक से खून निकलना बंद हो जाएगा। आंवला खाने से कई प्रकार की शारीरिक समस्याओं और रोगों से बचाव होता है और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है। खासतौर पर सर्दियों में आंवला बहुतायत में उपलब्ध होता है। आंवले का कई प्रकार से सेवन किया जाता है। किसी भी रूप में सेवन करने से यह फायदा करता है।

घने लंबे एवं मजबूत बालों के लिए

आंवला बालों के विकास को बढ़ावा देता है। यह उन्हें झड़ने से भी बचाता है। यह रूसी एवं गंजापन का शत्रु है और सफेद बालों से भी राहत प्रदान करता है। बालों को मजबूत करने और उन्हें एक चमकदार रूप देने के लिए आंवला रस एवं तिल के तेल का मिश्रण बालों की जड़ों में लगायें।

*कृषि प्रसार संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

लीची की वार्षिक बागवानी क्रियाएं

अमरेन्द्र कुमार*, एस.डी. पाण्डेय*, रामकिशोर पटेल* और कुलदीप श्रीवास्तव*

जनवरी

- लीची माइट, लीची विविल (घुन), लीफ माइनर, आदि से ग्रसित टहनियों को निकाल कर नष्ट कर दें।

फरवरी

- 10 प्रतिशत फूल खिलने की अवस्था में मधुमक्खी के 10-15 बक्से प्रति हैक्टर बागान में रखें ताकि पूर्णरूपेण परागण हो सके।
- फल लगने एवं मधुमक्खी के बक्से हटाने के बाद ही रासायनिक कीटनाशी या अन्य दवा का बागान में छिड़काव करें।

मार्च

- बौर निकलने के 15 दिनों बाद डायफेनकोनाजॉल (25 ई.सी.) 1.0 मि.ली./लीटर या कार्बेंडाजिम 1.0 ग्राम/लीटर घोल का पहला छिड़काव करें।
- फल लगने के 7-10 दिनों बाद प्लानोफिक्स 2.0 मि.ली./5 लीटर या एन.ए.ए. 20 पीपीएम (20 मि.ग्रा./लीटर के घोल का पहला छिड़काव करें ताकि फल झड़ने की समस्या न आये।
- बागों में नमी की कमी होने पर नियमित सिंचाई करते रहें।
- फलों के मसूर या लौंग दाने की अवस्था में निम्बीसिडीन या नीम बीज अर्क (5 मि.ली./लीटर) या पंचगव्य (30 मि.ली./लीटर) या वर्मीवाश 10 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें। इससे फलबेधक कीट के प्रभाव को कम किया जा सकता है। वैसे बागानों में जहां पिछले वर्ष में फलबेधक कीट का प्रकोप ज्यादा रहा हो, उसमें नोवाल्यूरॉन (10 ई.सी.) 1.5 मि.ली./लीटर के घोल का छिड़काव करें।

अप्रैल

- फल लगने की प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा (500-600 ग्राम यूरिया प्रति पौधा) तथा बचे पोटाश की मात्रा (600 ग्राम प्रति पौधा) का प्रयोग कर हल्की सिंचाई करें।
- फलों के फटने की समस्या से बचाव के लिए फल लगने के 15-20 दिनों बाद बोरेक्स (4 ग्राम/लीटर) के दो छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करें।
- बड़ी इलाइची के आकार के फल होने पर प्लानोफिक्स 2.0 मि.ली./5 लीटर या एन.ए.ए. 20 पी.पी.एम. (20 मि.ग्रा./लीटर) के घोल का दूसरा छिड़काव करें, ताकि फल झड़ने की समस्या न आये।
- फलों के गुच्छों को नान ओवेन पॉलीप्रोपलीन थैलियों में ढकें।
- फलों पर लाली आने के पहले निम्बीसिडीन (5 मि.ली./लीटर) या पंचगव्य (30 मि.ली./लीटर) घोल का 7 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव

लीची के नर्सरी में तैयार पौधे

*भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)

करें, ताकि फलों को फलबेधक कीट के प्रभाव से बचाया जा सके। ज्यादा प्रकोप की स्थिति में फल पकने के 20-25 दिनों पहले नोवाल्यूरॉन (10 ई.सी.) 1.5 मि.ली./लीटर या थियाक्लोप्रिड (21.7 एस.सी.) 0.5 मि.ली./लीटर के घोल का छिड़काव करें।

- अंतरवर्ती फसलें जैसे-हल्दी, ओल, अरबी आदि की बुआई करें।

मई

- बागों में फल पकने तक सिंचाई का समुचित प्रबंधन करें।
- फलबेधक कीट के प्रभाव को कम करने के लिए ऊपर बताए गई दवा का प्रयोग करें।
- इस माह के तीसरे सप्ताह से फलों की तुड़ाई करें। तुड़ाई प्रातःकाल 4-8 बजे तक ही करें। फलों को बाग में ही ठंडे स्थान पर झोंपड़ी बनाकर रखें, जहां फलों की छंटाई एवं पैकेजिंग की जा सके।
- पैकेजिंग हाउस की सुविधा न होने पर फलों को धूप से बचाते हुए वहां पहुंचायें ताकि छंटाई, पैकेजिंग एवं भंडारण किया जा सके।
- शीतलन की सुविधा के साथ ही रेफर वैन से कार्डबोर्ड के डब्बों में फलों को बाहर विपणन के लिए भेजने का प्रबंध करें या प्रसंस्करण करें।

नर्सरी में तैयार होते लीची के पौधे

लीची गुच्छा

जून

- तुड़ाई उपरांत पेड़ों की छंटाई करें। कीटों से प्रभावित टहनियों, सूखी तथा धड़ों से निकल रही टहनियों और पेड़ के उचित फैलाव से बाहर जा रही टहनियों को काटकर नष्ट कर दें, ताकि समुचित प्रकाश एवं हवा पौधों को मिल सके।
- बागों की हल्की जुताई करें, जिससे खरपतवार नष्ट हो जाएं एवं प्रकाश तथा हवा का आवागमन हो सके। जुताई उपरांत खेत में पाटा जरूर लगा दें।
- पहली अच्छी वर्षा के साथ प्रति पौधा 60-70 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 2-3 कि.ग्रा. नीम या करंज की खली, 1.1 से 1.2 कि.ग्रा. यूरिया, 1.5 कि.ग्रा. डीएपी एवं 1.0 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वृक्ष दें।
- खाद एवं उर्वरक पेड़ों के फैलाव से लगभग एक मीटर अंदर 20-25 सें. मी. चौड़ी एवं गहरी नाली बनाकर दें। कम नमी की स्थिति में हल्की सिंचाई करें, ताकि पौधे पोषक तत्वों को अच्छी तरह ग्रहण कर सकें।
- अंतरवर्ती फसलें जैसे-लोबिया, मक्का या हरी खाद के लिए ढैंचा, सनई आदि की बुआई करें।

जुलाई

- नई कोपलों को पत्ती खाने वाले कीटों से बचाने के लिए क्लोरपायरिफॉस (20 ई.सी.) 2.0 मि.ली/लीटर के घोल का छिड़काव करें। इसके साथ ही मकड़ी के प्रकोप को कम करने के लिए ग्रसित टहनियों को काटकर नष्ट कर दें।

लीची बाग

अगस्त

- बागों में जल जमाव दूर करने के लिए उचित जल निकास की व्यवस्था करें।
- शाखाओं पर अगर छिलका खाने वाले कीटों का प्रकोप नजर आये तो उसका उपचार करें। जाला को साफ कर छिद्र में सायकिल स्पोक घुसाकर कीटों को नष्ट करें एवं डाइक्लोरवॉस (76 ई. सी.) कीटनाशी का सांद्र घोल 1-2 बूंद छिद्र में डालकर छिद्रों को गीली मिट्टी से बंद करें।
- बागों की जुताई करें, ताकि हरी खाद फसलें अच्छी तरह से खेत में मिल जायें एवं खरपतवार आदि भी नष्ट हो जायें और वायु संचार अच्छा हो सके।
- पुराने बागों के जीर्णोद्धार का कार्य इसी महीने में किया जाना चाहिए।

सितंबर

- लीची बाग में नियमित पुष्पन व फलन के लिए पौधों की तीन-चौथाई प्राथमिक शाखाओं में 2 से 3 मि.ली. चौड़ाई के आकार में छाल हटाकर वलय/छल्ला (गर्डलिंग) बनाने से टहनियों में मंजर/फूल निकलते हैं। शाही किस्म में गर्डलिंग अगस्त के अंतिम सप्ताह से तथा चाइना किस्म में सितंबर के प्रथम सप्ताह में करें।
- नियमित पुष्पन व फलन के लिए वलय (गर्डलिंग) प्रत्येक वर्ष करना अनिवार्य है तथा दूसरे वर्ष वलयन प्रथम वर्ष से 1.5 इंच ऊपर करें।
- छिलका खाने वालों कीटों के प्रकोप के लिए ऊपर बताई विधि को अपनायें या दोहरायें।

रसीली लीची की बढ़ती मांग

- नई कोपलों/पत्तियों की खाने वाले कीटों से बचाव के लिए क्लोरपायरिफॉस (20 ई.सी.) मि.ली./लीटर के घोल का छिड़काव करें।

अक्टूबर

- बाग की जुताई न हुई हो तो जुताई कर पाटा मार दें।
- मकड़ी से प्रभावित टहनियों/पत्तियों को काटकर नष्ट कर दें एवं प्रोपरजाइट (57 ई.सी.) 3.0 मि.ली./लीटर के घोल का छिड़काव करें।
- इस माह में तांबा (कॉपर) की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। इसकी कमी को दूर करने के लिए 2.0 ग्राम प्रति लीटर कॉपर सल्फेट के घोल का पहला छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार दूसरा छिड़काव 15 दिनों के बाद करें।

नवंबर

- कटे भाग से टहनियां निकल रही हों तो उन्हें काटकर नष्ट करते रहें। छिलका खाने वाले कीटों पर ध्यान रखें। प्रकोप रहने पर ऊपर बताई गई विधि से उपचार करें।
- वर्षा खत्म होने पर बाग की हल्की जुताई/सफाई के बाद पेड़ों के तनों को कम से कम 1.5 मीटर ऊंचाई तक बोर्डो लेप (चूना : तुतिया : पानी 1 : 1 : 10) के अनुपात से पुताई करें।

दिसंबर

- जिंक सल्फेट (33 प्रतिशत) 2.0 ग्राम/लीटर के घोल का छिड़काव करें, जिससे मादा फूलों की संख्या में वृद्धि की संभावना बढ़ जाती है। आवश्यकतानुसार 15 दिनों बाद दूसरा छिड़काव करें।
- पोषक तत्वों की आवश्यकता के लिए मृदा व पत्तियों की जांच करवायें। तद्नुसार पोषक तत्वों का प्रयोग करें।

सामान्य सुझाव

- सामान्यत: नवंबर से फूल आने तक बाग की सिंचाई न करें।
- बाग में पर्याप्त नमी की अवस्था में ही खाद एवं उर्वरकों का व्यवहार तथा कोई छिड़काव करें।
- नमी संरक्षण के लिए पलवार (मल्चिंग) का प्रयोग करें।
- रासायनिक कीटनाशी का प्रयोग तभी करें, जब कीटों का प्रकोप नियमित रूप से बढ़ रहा हो अन्यथा समेकित कीट प्रबंधन तकनीक को अपनायें। रासायनिक घोल बनाने में 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से स्ट्रीकर को अवश्य मिलायें।

बागवानों के लिए आकर्षक आय का जरिया है लीची

दशहरी आम की आइसक्रीम से उद्यमिता विकास

पी.एस. गुर्जर*, **ए.के. वर्मा****, **मनीष मिश्रा*****, **रोहित जायसवाल******,
डी.के. शुक्ल***** और **एस. राजन********

उत्तर प्रदेश में मलीहाबाद फल पट्टी दशहरी आम के उत्पादन के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इस फल पट्टी में आम के बागों में लगभग 35-40 प्रतिशत फल छोटे आकार के लगते हैं। इन फलों का मंडी में कम मूल्य मिलता है, जिसके कारण आम उत्पादकों को आर्थिक क्षति होती है। दशहरी किस्म की तुड़ाई अवधि 30-35 दिनों की है। इस अल्प अवधि में बाजार में आम की अत्यधिक उपलब्धता होने से मूल्य में भारी गिरावट आ जाती है, जिसके कारण किसानों को उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इसके अलावा इस क्षेत्र में आम तुड़ाई, ढुलाई एवं विपणन के दौरान 18-20 प्रतिशत आम की क्षति हो जाती है। छोटे आकार के फलों का गूदा के प्रसंस्करण एवं गूदे से मूल्य संवर्धित उत्पाद निर्माण कर अतिरिक्त धनोपार्जन किया जा सकता है। इसके अलावा प्रसंस्करण के माध्यम से तुड़ाई उपरांत क्षति को भी कम किया जा सकता है।

फल
विशेषांक

आम के मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाने के लिए गूदा एक आधारभूत सामग्री है। गूदे से विभिन्न उत्पाद जैसे स्क्वैश, आरटीएस, टॉफी, आम पापड़, आइसक्रीम इत्यादि बनाए जाते हैं। आम के छोटे आकार के फलों का उपयोग गूदा प्रसंस्करण के लिए किया जा सकता है। प्रसंस्करण के पश्चात गूदे को लगभग एक वर्ष तक भंडारित किया जा सकता है। भंडारित गूदे को आम की उत्पादन अवधि समाप्त होने पर आम आधारित पेय उत्पाद बनाने वाली उद्यमों को बेचकर या गूदे से विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाकर धन कमाया जा सकता है। आइसक्रीम आम के गूदे का एक महत्वपूर्ण उत्पाद है, जो समाज के हर वर्ग तथा हर आयु के लोगों द्वारा पसंद किया जाता है। आम के गूदे का उपयोग कर गुणवत्तायुक्त आइसक्रीम बनाई जा सकती है। आम के गूदे की आईसक्रीम का प्रचार-प्रसार होने से बाजार में इसकी मांग बढ़ेगी। इसके कारण नए उद्यमी इस कार्य में आगे आएंगे तथा रोजगार के नए अवसर सृजित होंगे। आम के गूदे से निर्मित आइसक्रीम बाजार में उपलब्ध है, लेकिन केवल अल्फोन्सों आम की किस्म के गूदे से निर्मित है। उत्तरी भारत की किस्में जैसे-दशहरी, लंगड़ा, चौसा, आम्रपाली की आइसक्रीम बाजार में उपलब्ध नहीं है, क्योंकि बाजार में इन किस्मों का गूदा ही उपलब्ध नहीं है।

मैंगो फेस्टिवल, लखनऊ में आंगतुक दशहरी आइसक्रीम का लुत्फ उठाते हुए

मोबाइल वैन के माध्यम से
ग्रामीण क्षेत्रों में आइसक्रीम का विपणन

कैसे दशहरी आम की आइसक्रीम से हुआ उद्यमिता विकास

भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने आम के प्रसंस्करण को बढ़ावा देने के लिए फार्मर फर्स्ट परियोजना के अंतर्गत जून 2018 में आम का गूदा प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन पर मलीहाबाद के आम उत्पादकों एवं युवाओं के लिए प्रशिक्षण आयोजित किया था। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में गांव भदवाना, मलीहाबाद, लखनऊ के श्री मुस्लेहुद्दीन (22 वर्ष) ने भी भाग लिया था। वे आम उत्पादन के साथ-साथ आम का कृत्रिम सुवास एवं रंग का उपयोग करके आइसक्रीम भी बनाते थे। भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ के वैज्ञानिकों ने श्री मुस्लेहुद्दीन

*वैज्ञानिक, **वरिष्ठ वैज्ञानिक, ***प्रधान वैज्ञानिक, ****वरिष्ठ शोध अध्येता, *****तकनीकी अधिकारी, ******निदेशक, भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

आम से आइसक्रीम बनाने की प्रक्रिया

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुआ भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने उत्तरी भारत की आम की किस्मों के गूदे को प्रसंस्करित एवं भंडारित करने की विधि का विकास किया है। गूदे से विभिन्न प्रकार की आइसक्रीम निर्माण करने की तकनीक भी विकसित की गई है। दशहरी, आम्रपाली, मल्लिका तथा तोतापरी किस्म के गूदे से आइसक्रीम निर्मित की है। इन आइसक्रीम का स्वाद एवं रंग के आधार पर संवेदी विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि दशहरी तथा आम्रपाली के गूदे से निर्मित आइसक्रीम की स्वीकार्यता अधिकतम है। बीटा कैरोटीन की मात्रा आम्रपाली किस्म के गूदे से निर्मित आइसक्रीम में अधिकतम (3.51 मि.ग्रा./100 ग्राम), इसके बाद दशहरी आम की आइसक्रीम (3.11 मि.ग्रा./100 ग्राम) तथा निम्नतम तोतापरी किस्म की आइसक्रीम (1.86 मि.ग्रा./100 ग्राम) में मिली। आम गूदा आधारित आइसक्रीम निर्माण की विधि नीचे चित्र में वर्णित है।

1 कि.ग्रा. आम का गूदा

↓

200 ग्राम क्रीम एवं 5 ग्राम स्टेबिलाइजर

↓

मिश्रण का टीएसएस चीनी मिलाकर 28 डिग्री ब्रिक्स करें

↓

मिश्रण को 28 डिग्री बिक्स तापमान तक पकाएं

↓

मिश्रण का तापमान सामान्य होने के बाद कूल चैम्बर में 4 डिग्री ब्रिक्स पर 6-8 घंटे तक रखें

↓

मिश्रण को होमोजीनाइजर से होमोजीनाइज करें

↓

आइसक्रीम ब्रिक्स बनाएं या कप में भरकर डीपफ्रीजर में भंडारित करें

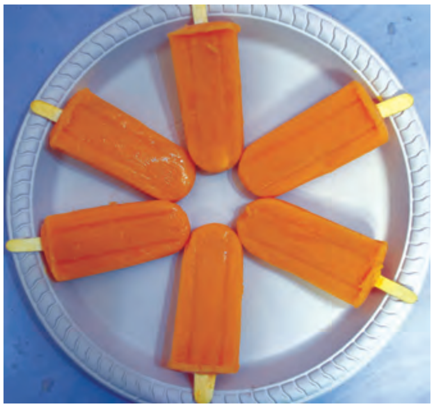

दशहरी किस्म की आइसक्रीम कैण्डी

ग्रामीण उद्यमिता विकास में लाभदायक

ग्रामीण क्षेत्रों में फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करण पर आधारित लघु उद्योगों की स्थापना होने से किसानों को अपने उत्पाद का उचित मूल्य मिलेगा। इससे किसानों की आय में बढ़ोतरी होगी तथा साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर सृजित होंगे। इसके अलावा उत्पाद का खेत से सीधे प्रसंस्करण इकाई में स्थापन होने से तुड़ाई उपरांत क्षति भी कम होगी। भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ इस दिशा में लगातार कदम उठा रहा है। ग्रामीण युवाओं तथा महिलाओं के लिए फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करण पर प्रशिक्षण आयोजित कर रहा है। प्रशिक्षण के अलावा लघु उद्योग स्थापित करने के लिए आवश्यक उपकरण, दस्तावेज, एफएसएसएआई पंजीकरण की जानकारी उपलब्ध करवा रहा है तथा बैंक से वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाने के लिए प्रोजेक्ट रिपोर्ट (डीपीआर) लिखने में भी मदद कर रहा है।

को आम के गूदे का उपयोग करके आम की प्राकृतिक आइसक्रीम बनाने का सुझाव दिया। इसके साथ ही उन्होंने आम का गूदा प्रसंस्करण एवं आम के गूदे की आइसक्रीम बनाने का प्रशिक्षण भी संस्थान में प्राप्त किया

दशहरी आम की आइसक्रीम

था। जून 2019 में संस्थान के तकनीकी सहयोग से आम की 25 व्यावसायिक तथा देसी किस्मों के गूदे से आइसक्रीम (कुल्फी, कैंडी, कप) तैयार करके आम महोत्सव एवं पर्यटन भवन लखनऊ में प्रदर्शित किया था। आम की आइसक्रीम दोनों ही प्रदर्शन स्थलों पर मुख्य आकर्षण का केंद्र थी। आगंतुकों ने दशहरी तथा आम्रपाली के गूदे से निर्मित आइसक्रीम को बेहद पसंद किया था एवं 30-50 रुपये तक एक कैंडी का मूल्य प्राप्त हुआ था। यह मूल्य कृत्रिम रूप से निर्मित आइसक्रीम (10 रुपये/कैंडी) से 3-5 गुना अधिक था। इस उद्यमी को आम महोत्सव में उत्तर प्रदेश सरकार के औद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग द्वारा आम के अभिनव उत्पाद वर्ग में प्रथम पुरस्कार दिया था। उन्होंने दशहरी आम की आइसक्रीम के उत्पादन के लिए 'स्वीटवेल' के नाम से एक उद्यम की स्थापना की है। इस लघु उद्यम का उन्नयन करने हेतु संस्थान ने पंजाब नेशनल बैंक से मुद्रा लोन स्कीम के माध्यम से वित्तीय सहायता प्रदान करवाई है। वर्तमान में आम आइसक्रीम को मोबाइल आइसक्रीम वैन के माध्यम से लखनऊ के शहरी तथा ग्रामीण इलाकों में बेचा जा रहा है। इसके अलावा शादी समारोहों में भी आपूर्ति की जा रही है। वर्तमान में यह उद्यम 5 युवाओं को उत्पादन स्थल पर तथा 15 युवाओं को आइसक्रीम विपणन के माध्यम से रोजगार प्रदान कर रहा है।

जानकारी

बागों में मानसून के कार्यकलाप

राम रोशन शर्मा*, **हरे कृष्णा****, **स्वाति शर्मा**** और **विजय राकेश रेड्डी*****

फलों के सफल उत्पादन के लिए उद्यान में नित्य की जाने वाली कृषि क्रियाओं का विशेष महत्व है। जुलाई-अगस्त की द्विमाही में होने वाली वर्षा, जहां गर्मी की तपिश से राहत दिलाकर जनमानस के हृदय को प्रफुल्लित करती है, वहीं दूसरी ओर फल-वृक्षों के बागों में खरपतवारों, विभिन्न रोगों एवं कीटों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। अतः इस द्विमाही में बागों में पानी के निकास की समुचित व्यवस्था करनी जरूरी है और सदैव हरे रहने वाले फल-वृक्षों के नये बागों को लगाने का कार्य भी समाप्त करना आवश्यक होता है। विभिन्न फलों के बागों में इस द्विमाही में किए जाने वाले कृषि कार्यों का समुचित विवरण प्रस्तुत है।

फल विशेषांक

आम

इस अवधि में नए बाग लगाने के लिए रोपाई का कार्य प्रारंभ कर देना चाहिए। रोपाई के समय यह ध्यान देना जरूरी है कि कलम का जुड़ाव बिंदु मिट्टी की सतह से कम से कम 6 इंच ऊपर हो। इसके साथ ही इस बात का ध्यान रहे कि रोपाई का कार्य सायंकाल अथवा जिस दिन हल्की-हल्की बरसात हो रही हो, उसी दिन करना चाहिए। रोपाई के बाद पौधों के चारों तरफ की मिट्टी को अच्छी तरह से दबा देना चाहिए और उसके बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें। वर्षा न होने की स्थिति में नियमित अंतराल पर सिंचाई की व्यवस्था सुनिश्चित करें। यदि वर्षा अधिक हो तो, बगीचों में जल-भराव से बचने के लिए जल निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। नए बाग में दो या तीन किस्मों को साथ अवश्य लगाएं। उत्तरी भारत की प्रमुख किस्मों जैसे-दशहरी, लंगड़ा, चौसा और बॉम्बे ग्रीन आदि में स्व-अनिषेच्यता की समस्या पाई जाती है। जिन किस्मों में यह समस्या होती है उनके फूल के पुंकेसर द्वारा पैदा किए हुए परागकण अपने ही स्त्रीकेसर को निषेचित नहीं कर सकते, जिससे उनमें फल नहीं लगते। परंतु दूसरी किस्म के परागकण निषेचित कर देते हैं। अतः ऐसी स्थिति में एक ही किस्म का बाग लगाया जाए तो वे बाग फलरहित रह जाते हैं। इस समस्या के निवारण के लिए

रसीला आम

*खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; **भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी-221005 (उत्तर प्रदेश); ***भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी अनुसंधान संस्थान, बीछवाल, बीकानेर-334006 (राजस्थान)

दशहरी के बाग में बॉम्बे ग्रीन व लंगड़ा और चौसा के बाग में दशहरी, सफेदा और मलीहाबादी किस्मों को लगाना ही उचित रहता है। यह द्विमाही विनियर कलम द्वारा पौधों को तैयार करने के लिए भी सबसे उपयुक्त समय है।

जुलाई के दौरान, आम की मध्यम अवधि वाली प्रजातियां पकने लगती हैं। अत: इनके फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए। फलों की तुड़ाई के पश्चात जुलाई के दूसरे पखवाड़े में प्रति वृक्ष 500 ग्राम की दर से नाइट्रोजन देना चाहिए। यदि बगीचे में श्यामव्रण रोग का प्रकोप दिखाई दे तो इसकी रोकथाम के लिए 0.125 प्रतिशत (125 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) ब्लिटॉक्स के घोल का छिड़काव करें।

अगस्त में पछेती पकने वाली किस्मों के फलों की तुड़ाई करें तथा श्यामव्रण से बचाव के लिए ब्लिटॉक्स का दूसरा छिड़काव करें। यदि वृक्षों में गोंदार्ति की समस्या दिखे तो कॉपर आक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) + बुझा हुआ चूना (0.1 प्रतिशत) + बोरेक्स (0.4 प्रतिशत) मिश्रण के घोल का छिड़काव करें। अगले वर्ष पौधशाला में नए पौधे तैयार करने के लिए मूलवृंत के लिए फलों की गुठलियों को एकत्रित करके क्यारियों में बो दें। यदि जुलाई में किसी कारणवश विनियर कलम न की जा सकी हो तो पौधे तैयार करने के लिए अगस्त में कलम अवश्य करें।

पपीता

जुलाई में मैदानी क्षेत्रों के बागवान पपीते की पौध तैयार कर सकते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम वांछित प्रजाति के बीजों को चयन के बाद किसी कवकनाशी से उपचारित करें। उपचारित बीजों को ऊंची उठी हुई क्यारियों में बोना चाहिए ताकि पौधों के पास कभी जल एकत्रित न हो। पौधशाला में बीजों/पौधों के आर्द्रपतन रोग से बचाने के लिए क्यारियों को बुआई से 15 दिन पहले ही 2.5 प्रतिशत फार्मेल्डिहाइड के घोल से उपचारित करने के 48 घंटे बाद पॉलीथीन से ढककर कीटाणुरहित कर लें। पुराने बाग खरपतवार मुक्त होने चाहिए तथा उनमें जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। सड़न रोग से बचाव के लिए कवकनाशी ब्लिटॉक्स (0.3 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव पौधों के तनों एवं थालों में करें एवं पौधों के तनों के चारों ओर मिट्टी अवश्य चढ़ाएं। बीजों के अंकुरण के बाद थीरम (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें। पपीते के पौधे जल-भरण के प्रति बेहद संवेदनशील होते हैं। बगीचे में जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

केला

जुलाई में पौधों से अवांछित पत्तियों को निकालने की व्यवस्था करें। जुलाई के प्रारंभ में जल निकास के उचित प्रबंधन के लिए, पौधों के तनों के चारों ओर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इस दौरान, फलयुक्त पौधों को बांस से बांधकर सहारा देना चाहिए। नए बाग लगाने का कार्य भी इस माह किया जा सकता है। इसके लिए तलवार की शक्ल के स्वस्थ एवं रोग-मुक्त अंत:भूस्तारी का चुनाव करना चाहिए। इनसे अच्छी गुणवत्ता वाले फल और ज्यादा उत्पादन मिलता है। चयनित अंत:भूस्तारी 2 से 4 माह की आयु का एवं 1.5 से 2 कि.ग्रा. वजन का होना चाहिए। लगाने से पूर्व जड़ों को छांट लें तथा छद्म तने को घनकन्दों से 20 सें.मी. की ऊंचाई तक काट लें। केले की प्रजातियों रस्थली, मंथन, विरुपक्षी और अन्य म्लानि संवेदनशील किस्मों में म्लानि रोगों से बचाने के लिए, घनकन्दों के संक्रमित हिस्सों को 0.1 प्रतिशत एमिशन (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) में 5 मिनट के लिए डालकर उपचारित करें। सूत्रकृमि से बचाव के लिए प्रालिनेज की प्रक्रिया के लिए प्रत्येक अंत:भूस्तारी को कार्बोफ्यूरॉन 3 जी कणिकाओं के 40 ग्राम के साथ उपचारित किया जाता है। इसके लिए 4 भाग मिट्टी, 5 भाग पानी और कार्बोफ्यूरॉन से बने गाढ़े घोल में घनकन्दों को डुबोते हैं। वैकल्पिक रूप से घनकन्दों को 0.75 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस घोल में डुबोकर निकाल लें

ऊतक संवर्धित केले की पौद लगाना है लाभकारी

और लगाने से पूर्व कम से कम 24 घंटे छाया में सुखाने के लिए छोड़ें। रोपण के 45वें दिन पटसन की बुआई करें तथा लगभग एक महीने बाद इसकी जुताई कर मिट्टी में मिला दें। यह कृषि क्रिया सूत्रकृमि को बढ़ने से रोकती है। बागवान 5-6 पत्तियों वाले ऊतक संवर्धित पौधों का भी प्रयोग रोपाई के लिए कर सकते हैं। रोपण के समय, सूक्ष्म जीवाणु स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस को 25 ग्राम प्रति पौध की दर से भी उपयोग में लाया जा सकता है।

अमरूद

जुलाई, बाग में रोपण, रिक्त स्थानों की पूर्ति एवं पौधे तैयार करने जैसे कृषि कार्यों के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। गूटी या कलम से तैयार अमरूद के पौधों को मृदा गेंद के साथ 45×45×45 सें.मी. के पहले से खुदे गड्ढों के बीचों-बीच रोपित करना चाहिए। रोपित पौधों को तुरंत सिंचाई दें। इसके बाद तीसरे दिन और फिर प्रत्येक 10 दिनों के अंतराल पर अथवा आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिए। श्यामव्रण अमरूद का एक प्रमुख रोग है, जिसे यदि समय रहते नियंत्रित नहीं किया जाए तो यह फसल को बहुत हानि पहुंचा सकता है। इस रोग को नियंत्रित करने के लिए कार्बेण्डाजिम (2 ग्राम प्रति लीटर) का फलों पर और बोर्डो मिश्रण (3:3:50) अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर) का तनों तथा पत्तियों पर छिड़काव करें। पुराने या स्थापित बगीचों में 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का 15 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। बाग में कीटों का प्रकोप होने पर क्विनोल्फोस 25 ई.सी. का 2 मि.ली. प्रति लीटर या मोनोक्रोटोफॉस का 2 मि.ली. प्रति लीटर या नीम तेल का 3 प्रतिशत की दर से 21 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। छिड़काव प्रात: काल या संध्या काल में करें। सर्दियों के मौसम वाली फसल के लिए फूल आने से पहले 0.4 प्रतिशत बोरिक एसिड का छिड़काव करें। इससे फलों के आकार और उपज में वृद्धि हो सकती है। फलों के वर्तिकाग्र सड़न की रोकथाम के लिए कार्बेण्डाजिम (2 ग्राम प्रति लीटर) अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर) का फलन से पहले छिड़काव करें। ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई भी छिड़काव तुड़ाई के 15 दिन पहले नहीं किया जाये।

अगस्त में फल मक्खी के प्रकोप को कम करने के लिए गिरे हुए तथा ग्रसित फलों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए। छेदक कीटों से भी अमरूद के बागों को काफी क्षति होती है। इससे बचाव के लिए बागों

अमरूद की बरसाती फसल भी ले सकते हैं थैलाबंदी से

आंवला

जुलाई-अगस्त की द्विमाही आंवला के प्रवर्धन के लिए उपयुक्त समय होता है। इस दौरान बीजों की बुआई कर सकते हैं तथा अंकुरित पौधों को एक महीने बाद क्यारियों में स्थानांतरित किया जा सकता है। क्यारियों में वे अगले वर्ष जुलाई तक प्रवर्धन के लिए तैयार हो जाते हैं। जुलाई-अगस्त में ही आंवला में पैबंदी कलिकायन या विरूपित छल्ला विधि द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। शांकुर शाखा का चुनाव ऐसे मातृवृक्ष से करना चाहिए, जो अधिक फलत देने वाला हो तथा कीटों एवं व्याधियों के प्रकोप से मुक्त हो। जुलाई-अगस्त में ही कलिकायन द्वारा तैयार पौधों को 8-10 मीटर (किस्म के अनुसार) की दूरी पर बगीचों में रोपित कर सकते हैं। रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक की आधी मात्रा जुलाई-अगस्त में आंवला में डालनी चाहिए। आंवले का रस्ट रोग इसकी एक महत्वपूर्ण समस्या है। इसके नियंत्रण के लिए घुलनशील गंधक (0.4 प्रतिशत) या क्लोरथैलोनिल (0.2 प्रतिशत) का तीन छिड़काव एक माह के अंतराल पर जुलाई से करने पर रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है। श्यामव्रण, आंवले की पत्तियों व फलों पर अगस्त से दिखाई देना प्रारंभ हो जाता है। इसके प्रबंधन के लिए, कार्बेण्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का तुड़ाई से 15 दिन पूर्व छिड़काव करें। जुलाई-अगस्त में गुठलीछेदक का प्रकोप भी देखा जा सकता है। इसके नियंत्रण के लिए क्विनोल्फोस या सेविन का 2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

अनार

जुलाई-अगस्त में गूटी, कर्तन अथवा ऊतक संवर्धन विधि द्वारा तैयार पौधों का खेत में रोपण करना चाहिए तथा रोपण के तुरंत बाद सिंचाई करें। मृग बहार की उपज लेने के लिए, अनार के पौधों में दिये जाने वाले गोबर की खाद तथा फॉस्फोरस की पूरी एवं नाइट्रोजन और पोटाश की आधी मात्रा जुलाई में देनी चाहिए। खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग छत्रक के नीचे चारों ओर 8-10 सें.मी. गहरी खाई बनाकर देनी चाहिए। यदि गूटी द्वारा अनार का प्रवर्द्धन करना हो तो जुलाई-अगस्त में एक वर्ष पुरानी पेन्सिल समान मोटाई वाली स्वस्थ, ओजस्वी, परिपक्व, 45-60 सें.मी. लम्बाई की शाखा का चयन कर लेना चाहिए। चुनी गई शाखा से कलिका के नीचे 3 सें.मी. चौड़ी गोलाई में छाल पूर्णरूप से अलग कर देना चाहिए। छाल निकाली गई शाखा के ऊपरी भाग में आई.बी.ए. 1000 पी.पी.एम. का लेप लगाकर नमीयुक्त स्फेगनम मॉस चारों ओर लगाकर पॉलीथीन शीट से ढककर सुतली से बांधना चाहिए। इसके बाद जब पॉलीथीन से जड़ें दिखाई देने लगें उस समय शाखा को काटकर क्यारी में स्थापित कर लें। तेलिया रोग से संक्रमित क्षेत्रों में मृग बहार नहीं लिया जाना चाहिए, अन्यथा जुलाई से अगस्त के दौरान रासायनिक जैवनाशियों, सेलिसिलिक अम्ल, बोरॉन, कैल्शियम इत्यादि का नियमित रूप से प्रयोग करना पड़ेगा। यदि उद्यान में माहूं कीट का प्रकोप हो तो प्रोफेनाफॉस-50 का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने की स्थिति में इमिडाक्लोप्रिड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अनार में फलों का फटना एक गंभीर समस्या है। यह शुष्क क्षेत्रों में अधिक होती है। इसके प्रबंधन के लिए नियमित रूप से सिंचाई करें एवं जिब्रोलिक अम्ल (जी.ए.-3) 15 पी.पी.एम. तथा बोरॉन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

अनार के फलों को फटने से बचाएं

में नियमित रूप से कीटों को एकत्रित कर उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कार्बारिल (0.2 प्रतिशत) या सेविन कीटनाशी का फलन के समय या फलों के पकने से पहले छिड़काव करें। जब फल कंचे के आकार के हो जाएं, तब से सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, लौह, तांबा, मैंगनीज इत्यादि के मिश्रण का भी 2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से दस से बारह दिन के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। म्लानि अथवा विल्ट से पौधों को बचाने के लिए उद्यान में निरंतर साफ-सफाई करते रहें। इसके अतिरिक्त, नीम केक, जैविक खाद इत्यादि का भरपूर प्रयोग करें एवं बाग में निकासी समुचित व्यवस्था सुनिश्चित करें।

खजूर

इस द्विमाही के दौरान, खजूर के फल पकने लगते हैं। इस दौरान फलों की तुड़ाई का कार्य किया जाता है। वर्षा प्रारंभ होने के कारण खजूर पूरी तरह से नहीं पक पाते हैं। उन्हें डोका अथवा प्रारम्भिक डांग अवस्था पर तोड़ लेना चाहिए। वातावरण में नमी के कारण तोड़े हुये फलों में फफूंद लगने की आशंका रहती है। अत: उन्हें शीघ्रातिशीघ्र

बाजार विक्रय के लिए खजूर

प्रसंस्करण के लिए ले जाना चाहिए। नए बाग लगाने के लिए भी यह समय उपयुक्त रहता है। बाग लगाने के लिए, स्वस्थ एवं व्याधि-रहित प्रशाखा का चुनाव करें, जिनका वजन 15-20 कि.ग्रा. तक हो। बागवान ऊतक संवर्धित पौधों का भी प्रयोग रोपाई के लिए कर सकते हैं।

लीची

जुलाई में लीची के बगीचों में कई महत्वपूर्ण कृषि क्रियाएं करनी होती हैं। इस अवधि के दौरान, पेड़ के नीचे की जमीन को हमेशा साफ रखें एवं जल निकास की समुचित व्यवस्था करें। नए बाग लगाने एवं गूटी द्वारा पौधे तैयार करने का कार्य भी बागवान इसी माह शुरू कर सकते हैं। जुलाई में पौधों में खाद व उर्वरक की समुचित व्यवस्था करें। यदि जुलाई में गूटी ना बांधी गई हो तो, यह कार्य अगस्त में समाप्त कर लें। बाग को खरपतवारों से मुक्त रखें। पुराने बागों में तनाछेदक कीट की समस्या रहती है। अगस्त में इस कीट की रोकथाम के लिए सुझाई गई विधि का प्रयोग करें। इस कीट की रोकथाम के लिए बाग को साफ रखना चाहिए तथा तने में बने हुए छिद्रों में क्लोरोफॉर्म, पेट्रोल या मिट्टी के तेल में रूई डुबोकर भरने के

तैयार लीची

बाद छेदों को गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। यह कीट रात के दौरान सक्रिय हो जाता है और दिन के समय में तनों में छुपा रहता है। इन्हीं दिनों गूटी द्वारा तैयार किए गए पौधों को पौधशाला में अवश्य लगाएं।

अंगूर

जुलाई में मध्यम या देर से पकने वाली किस्मों के फलों की तुड़ाई के बाद बाजार में भेजने की व्यवस्था करें। इस माह में फलों के फटने व सड़ने की समस्या आती है। इससे बचाव के लिए कवकनाशी ब्लिटॉक्स (0.3 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव अवश्य करें। इसी दौरान फलों को चिड़ियों एवं बर्रों से भी बचाना चाहिए। फलों को चिड़ियों से बचाने के लिए चमकीले रिबन (पट्टियां) का उपयोग करना चाहिए या गुच्छों में हरी थैलियां लगा दें। बाग में लगे बर्र के छत्तों को नष्ट करने का उपाय करें। फलों की तुड़ाई के बाद खाद व उर्वरक देने की व्यवस्था करें। अगस्त में एंथ्रोक्नोज रोग के प्रकोप

तुड़ाई हेतु अंगूर

नीबूवर्गीय फल

जुलाई में लेमन व लाइम के फल पककर तैयार हो जाते हैं। उन्हें तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। इसी माह नया बाग लगाने का कार्य भी कर सकते हैं। कैंकर रोग से छुटकारा पाने के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (250 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) और नीम की खली (5 कि.ग्रा. प्रति 100 लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करें। जल निकास की उचित व्यवस्था करें। रोपाई का कार्य यदि जुलाई में न हो सका हो तो अगस्त में इसे पूरा करें। पर्णसुरंगी कीट से बचाव के लिए पौधशाला में रोगोर या मेटासिस्टॉक्स (300 मि.ली. प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव करें। नीबू की तितली से बचाव के लिए मोनोक्रोटोफॉस का छिड़काव करें। फलों का तुड़ाई-पूर्व गिरना एक गंभीर समस्या है। अगस्त में 10 पी.पी.एम. 2,4 डी (1 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव अवश्य करें। जुलाई-अगस्त की द्विमाही में कम से कम एक बार अवश्य पेड़ों के नीचे से खरपतवार निकालकर थालों की सफाई करें। इसके अतिरिक्त मूलवृंत से निकालने वाले पार्श्व फुटाव को भी अवश्य निकाल दें अन्यथा इससे सांकुर की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। नीबूवर्गीय फल वृक्षों में लगभग सभी सूक्ष्म तत्वों की विशेष कमी पाई जाती है, जिनकी पूर्ति के लिए जिंक सल्फेट, मैग्निशियम सल्फेट, बोरिक अम्ल, बुझा हुआ चूना (प्रत्येक एक कि.ग्रा. प्रति 450 लीटर पानी) आदि के संयुक्त घोल का छिड़काव करें। इस घोल में यदि 5 कि.ग्रा. यूरिया डाल लें तो यह नाइट्रोजन की कमी को पूरा करता है।

नीबू के फलों को फटने से बचाएं

स्ट्राबेरी

रोपण हेतु तैयार स्ट्रॉबेरी का पौधा

पहाड़ों में स्ट्रॉबेरी के पौधे जुलाई-अगस्त में लगाए जा सकते हैं। यदि समुचित बरसात न हो तो क्यारियों में पानी एवं सितम्बर में उचित पलवार (मल्च) की व्यवस्था करें। खेत की अच्छी तरह जुताई करके एवं गोबर आदि खाद मिला करके 6 × 1 × 15 मीटर आकार की क्यारियां बना लें एवं 15 × 15 या 15 × 30 या 30 × 30 सें.मी. की दूरी पर पौधे लगाएं।

कटहल

जुलाई में कटहल के तैयार फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। बागों में समुचित जल निकास का प्रबंध होना चाहिए। नए बाग लगाने का कार्य भी इसी माह प्रारंभ कर दें। अगस्त में नर्सरी तैयार करने के लिए बीजों को फलों से निकाल कर पौधशाला में बोएं। गूटी द्वारा पौधे तैयार करने का भी यही उत्तम समय है।

की आशंका रहती है। समय रहते ही इसकी रोकथाम के लिए बाविस्टिन (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें।

लोकाट

जुलाई में काट-छांट का कार्य समाप्त कर लेना चाहिए। पेड़ों के नीचे की जमीन साफ कर बाग को खरपतवाररहित रखें। अगस्त में गूटी बांधने का कार्य समाप्त कर लें। इसी माह नए बाग लगाने का कार्य भी कर सकते हैं।

बेर

जून में काट-छांट के बाद यदि किसी कारणवश नाइट्रोजन की मात्रा न दी जा सकी हो तो उसे जुलाई में अवश्य दें। बाग में जल निकास की समुचित व्यवस्था करें। पौधशाला में बीजू पौधे तैयार करने के लिए यदि बुआई न की जा सकी हो तो इसे जुलाई में अवश्य करें। यदि पेड़ों पर चूर्णिल रोग के लक्षण दिखें तो केराथेन (0.1 प्रतिशत) के दो छिड़काव अगस्त में अवश्य करें। अगस्त के दौरान बेर की कुछ किस्मों में पुष्पन भी प्रारंभ हो जाता है, अत: छिड़काव का फूलों पर कोई प्रभाव न पड़े इसका ध्यान अवश्य रखें।

सेब

हमारे देश में जुलाई-अगस्त सेब का मुख्य सीजन होता है। पकने वाली किस्मों को तोड़कर बाजार में भेजने की व्यवस्था करें। अगस्त में डिलीशियस किस्में पककर तैयार हो जाती है। उन्हें अच्छी एवं सुंदर पैकिंग कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। कज्जली धब्बा का प्रकोप होने पर डाइथेन-जेड 78 (0.2 प्रतिशत) घोल का छिड़काव लाभप्रद रहता है। इसी माह नए पौधे तैयार करने के लिए कलम चढ़ाएं। रूईया एवं सेंजोस स्केल आदि कीटों की रोकथाम के लिए सितम्बर में मेटासिस्टॉक्स (0.5 प्रतिशत) का छिड़काव करें। फलों को तुड़ाई-पूर्व गिरने से रोकने के लिए 20 पी.पी.एम. नेफ्थलीन एसिटिक अम्ल (2 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव अगस्त में अवश्य करें।

नाशपाती, आड़ू, खुबानी व आलूबुखारा

नाशपाती के बीजू पौधों पर भेंट कलम जुलाई में चढ़ानी चाहिए। इसी माह आड़ू, खुबानी और आलूबुखारा आदि फलों

ताजे आड़ू

को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। कज्जली धब्बों की रोकथाम के लिए नाशपाती एवं अन्य फलों में डाइथेन जेड-78 (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। आड़ू, खुबानी व आलूबुखारा में भूरा सड़न रोग की रोकथाम के लिए बाविस्टिन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। अगस्त में नाशपाती के फलों को तोड़कर भेजने की व्यवस्था करें एवं फल सड़न रोग की रोकथाम के लिए ब्लिटॉक्स (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें। ■

हींग और केसर की खेती को मिलेगा बढ़ावा

केसर और हींग दुनिया के सबसे मूल्यवान उत्पादों में गिने जाते हैं। भारतीय व्यंजनों में सदियों से हींग और केसर का व्यापक रूप से उपयोग होता रहा है। इसके बावजूद देश में इन दोनों ही कीमती उत्पादों का उत्पादन सीमित है। भारत में केसर की वार्षिक मांग करीब 100 टन है, लेकिन हमारे देश में इसका औसत उत्पादन लगभग 6-7 टन ही होता है। इस कारण प्रत्येक वर्ष बड़ी मात्रा में केसर का आयात करना पड़ता है। इसी तरह, भारत में हींग उत्पादन भी नहीं है और प्रत्येक वर्ष 600 करोड़ रुपये मूल्य की लगभग 1200 मीट्रिक टन कच्ची हींग अफगानिस्तान, ईरान और उज्बेकिस्तान जैसे देशों से आयात करनी पड़ती है। सीएसआईआर-आईएचबीटी ने हींग और केसर की खेती के लिए हिमाचल प्रदेश सरकार के साथ समझौता किया है।

केसर और हींग का उत्पादन बढ़ाने के लिए हिमाचल प्रदेश के पालमपुर में स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन बायोरिसोर्स टेक्नोलॉजी (सीएसआईआर-आईएचबीटी) ने परस्पर रूप से रणनीतिक साझेदारी बढ़ाने के लिए हिमाचल प्रदेश के कृषि विभाग के साथ हाथ मिलाया है। यह साझेदारी हिमाचल प्रदेश में कृषि आय बढ़ाने, आजीविका में वृद्धि और ग्रामीण विकास के उद्देश्य को पूरा करने में मददगार हो सकती है। इस पहल के तहत किसानों और कृषि विभाग के अधिकारियों को क्षमता निर्माण, नवाचारों के हस्तांतरण, कौशल विकास और अन्य विस्तार गतिविधियों का लाभ मिल सकता है।

सीएसआईआर-आईएचबीटी किसानों को इसके बारे में तकनीकी जानकारी मुहैया करवाने के साथ-साथ राज्य कृषि विभाग के अधिकारियों एवं किसानों को प्रशिक्षित भी करेगा। राज्य में केसर और हींग के क्रमशः घनकंद और बीज उत्पादन केंद्र भी खोले जाएंगे। वर्तमान में जम्मू और कश्मीर में लगभग 2,825 हैक्टर क्षेत्रफल में केसर की खेती होती है। सीएसआईआर-आईएचबीटी ने केसर उत्पादन की तकनीक विकसित की है, जिसका उपयोग उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के गैर-परंपरागत केसर उत्पादक क्षेत्रों में किया जा रहा है। संस्थान में रोगमुक्त घनकंद के उत्पादन के लिए टिश्यू कल्चर प्रोटोकॉल भी विकसित किए गए हैं। सीएसआईआर-आईएचबीटी ने नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज (एनबीपीजीआर), नई दिल्ली की मदद से हींग से संबंधित छह पादप सामग्री पेश की हैं और उनके उत्पादन की पद्धति को भारतीय दशाओं के अनुसार मानक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है।

हींग एक बारहमासी पौधा है और यह रोपण के पांच वर्ष बाद जड़ों से ओलियो-गम राल का उत्पादन करता है। इसे ठंडे रेगिस्तानी क्षेत्र की अनुपयोगी ढलान वाली भूमि में उगाया जा सकता है। इस पहल के शुरू होने के बाद इन दोनों फसलों की गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए अत्याधुनिक टिश्यू कल्चर लैब की स्थापना की जाएगी। ■

डाक विभाग घर तक पहुंचाएगा 'शाही लीची' और 'जर्दालु आम'

आम और लीची के शौकीनों के लिए खुशखबरी है। इस मौसस में इन फलों का स्वाद लोग घर बैठे ले सकते हैं। भारत सरकार के डाक विभाग और बिहार सरकार के बागवानी विभाग ने लोगों के दरवाजों तक 'शाही लीची' और 'जर्दालु आम' की आपूर्ति करने के लिए हाथ मिलाया है। बिहार पोस्टल सर्किल ने बिहार सरकार के बागवानी विभाग के साथ मुजफ्फरपुर से शाही लीची और भागलपुर से जर्दालु आम लेकर तथा इनकी लोगों के दरवाजों तक प्रदायगी करने के लिए एक करार किया है।

कोरोना वायरस को सीमित करने के लिए लॉकडाउन के कारण लीची और आम के उत्पादकों को फलों को बेचने के लिए बाजार तक ले जाने के लिए परिवहन की परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। लोगों के बीच इसकी आपूर्ति एक बड़ी चुनौती बन गई है इसलिए आम लोगों की मांग को पूरी करने और किसानों को उनका फल बेचने के लिए बिना किसी बिचौलिये के सीधे उनका बाजार उपलब्ध करवाने के लिए बागवानी विभाग और डाक विभाग ने इस पहल के लिए समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किया है।

मुजफ्फरपुर (बिहार) की 'शाही लीची' और भागलपुर (बिहार) का 'जर्दालु आम' अपने अनूठे स्वाद और प्रत्येक जगह मांग के कारण दुनियाभर में विख्यात हैं। लोग ऑनलाइन तरीके से वेबसाइट www.horticulture. bihar.gov.in पर आर्डर दे सकते हैं। आरंभ में यह सुविधा 'शाही लीची' के लिए मुजफ्फरपुर और पटना के लोगों को तथा 'जर्दालु आम' के लिए पटना और भागलपुर के लोगों के लिए उपलब्ध होगी। लीची की बुकिंग न्यूनतम 2 कि.ग्रा. तथा आम की बुकिंग न्यूनतम पांच कि.ग्रा. तक के लिए होगी। ■

प्रस्तुति : **अश्वनी कुमार निगम**

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)–437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 73 वर्षो से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **‘अगले माह के कृषि कार्यकलाप’** तथा ***‘कृषि खबरें, देश विदेश की’*** जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्यः

एक प्रति : 30 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रुपये

संपर्क सूत्रः व्यवसाय प्रबंधक

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012

दूरभाष : 011–25843657, ईमेल : bmicar@icar.org.in

डा. एस. के. सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादकः अशोक सिंह